# वेदोक्त राज्य

तथा

# प्राचीन भारत की राज्य प्रणाली

'*Shivaji The Great*' (4 Vols.) तथा '*ईश्वरीय ज्ञान वेद*'

के यशस्वी लेखक

**डॉ. बालकृष्ण**

# वेदोक्त राज्य

तथा

# प्राचीन भारत

की

# राज्य-प्रणाली

कालेज लेक्चरर

बालकृष्ण

# पुस्तकों के नाम जिन में से वाक्य उद्धृत किये गये हैं:-


१—चार वेद

२—शतपथ, तैत्तिरीय तथा ऐत्तरेय ब्राह्मण

३—रामायण

४—महाभारत-शान्ति पर्व

५—मनुस्मृति

६—धर्म सूत्र

७—शुक्र नीति

८—चाणक्य अर्थशास्त्रम्

९—कामन्दकीय शास्त्रम्

१०—सत्यार्थ प्रकाश

११—वेदादि भाष्य भूमिका

१२—**रामदेव**-भारत वर्ष का इतिहास

१३ **बालकृष्ण**-भारत वर्ष का संक्षिप्त इतिहास

१४—हिन्दुओं की राज कल्पना

14—Hobbes-Leviathan

15—Bluntschli-The State

16—Aristotle-Politics

17—J. S. Mill-Representative Government

18—R. David-Budhistic India

# प्रस्तावना ।

प्राचीन आर्य्य साहित्य और जगत् के गत इतिहास की सहायता लेकर इस पुस्तक को रचा गया है । इस के पाठ से पाठक वृन्द निम्न बातों का ज्ञान प्राप्त करेंगे:—

(I) राज विषयक बातों में आर्य्यों की उन्नति तथा अवनति के कारण प्रतीत होंगे:—

(II) वेदों के ईश्वरीय ज्ञान होने का एक दृढ़ प्रमाण मिलेगा क्योंकि गत तीन हज़ार वर्षों के संसार—इतिहास के ऐतिहासिकों का यह पूर्ण विश्वास है कि एक सत्तात्मक और वह भी वंश परम्परा का शासन आदर्श राज नहीं—वह दोषों की खान है । हां, जाति २ की सभ्यता के भिन्न होने से भिन्न प्रकार की शासन शैलियां आवश्यक हैं किन्तु प्रश्न यह है कि अधिकतम सुख, शांति वा उन्नति—मानसिक आत्मिक और शारीरिक, किस राज—पद्धति से प्राप्त हो सकती है? राज विषयक कौनसा आदर्श मनुष्यों को अपने सामने रखना चाहिये? नीतिशास्त्र के तत्व वेत्ताओं ने विस्पष्टतया दिखाया है कि प्रजात्मक राज्य श्रेष्ठ होता है, वही मानव जाति

का उद्देश्य आदर्श वा लक्ष्य है, इस सर्वोत्तम साधन की प्राप्ति से अधिकतम शांति तथा उन्नति प्राप्त हो सकती हैं। चारों वेदों ने भी इसी राज–प्रणाली का प्रतिपादन किया है और मनुष्यों ने सहस्रों वर्षों के अनुभव से प्रजात्मक राज को ही उत्तम निश्चित किया है ! इस प्रकार वेदों का अद्भुत महत्व है।

( iii ) हमारे पूर्वजों ने राज के प्रारम्भ और अद्भव के बारे में जो विचार कई हज़ार वर्ष पूर्व प्रकट किये थे वही विचार योरुप में तीन चार सौ वर्षों से प्रकट हुए हैं।

( IV ) राज के भिन्न २ प्रकार भी सब से पहिले भारतीय आर्य्यों ने बताये !

( V ) यद्यपि भारत के ज्ञात इतिहास में वंशपरम्परा एक सत्तात्मक राज्यपद्धति ही प्रचलित दीख पड़ती है तथापि वेदों तथा ब्राह्मण ग्रन्थों की आज्ञाओं के वह सर्वथा विरुद्ध थी, वेदादि सत् शास्त्रों ने ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र गुण कर्म स्वभाव से माने हैं न कि जन्म से–अतः राजा के घर में उत्पन्न बालक को अवश्य राजा बनाया जावे यह विधि आर्य्यों के मौलिक सिद्धान्तों के विरुद्ध है। हां, जब भारत में ज़ाति की अवस्था गिर गयी, तब वंश परम्परा एक सत्तात्मक राज प्रणाली यहां पर प्रचलित की गयी, यद्यपि ऐसा करने में वेदोक्त आदर्श से गिरना भी पड़ा।

( VI ) आर्य्यावर्त में एक सत्तात्मक राज जब आवश्यक हुआ तो उसे सुखकारी बनाने के लिये उस के स्वेच्छाचार को कई प्रकार के कड़े बन्धनों से रोक कर पितावत राज्य शैली की गयी ।

( VII ) कुछ काल के व्यतीत होने पर एक सत्तात्मक राज को आवश्यक समझते हुए राजा की शक्ति को बढ़ाने का महान् यत्न किया गया जिस से प्रजा की स्वतन्त्रता, साहस, नवीनता, सदाचार, सद्विचार आदि पर बुरा प्रभाव पड़ा, अतः वे मुसलमानों के स्वेच्छाचार और अत्याचार के लिये तय्यार हो गये ।

( VIII ) राजा गण राष्ट्र को निज की जायदाद अमली तौर पर समझ कर उसे दान देते रहे यद्यपि उनका यह कार्य वेद विरुद्ध था जैसा कि जैमिनी मुनी ने मीमांसा दर्शन में दिखाया है ।

( IX ) संसार में जहां २ भी सत्तात्मक वंशपरम्परा का स्वेच्छाचारी राज रहा, वहां अन्ततः प्रजा की उन्नति रुक गयी या प्रजा अवनत हो गयी-अतः वह आदर्श राज नहीं । **प्रजा का राज प्रजा के हितार्थ ही आदर्श राज्य है।**

( X ) उक्त सद् सिद्धान्तों की पुष्टि वेदों के बहुत से मन्त्रों से मिलती है। हमारे पूर्वजों ने ईश्वरीय ज्ञान के विरुद्ध चलकर अकथनीय संकट सहन किये। अब लगभग सर्व सभ्य जातियों में प्रजात्मक राज है भारत में वह राज पद्धति नहीं क्योंकि भारतीय उस के अभी योग्य नहीं, किन्तु आशा है कि इस पुस्तक के पाठ से उनके दिलों में प्रजात्मक राज प्राप्त करने की दृढ़ इच्छा उत्पन्न होगी और वे नियमों में चलते हुए उसकी प्राप्ति का यत्न करेंगे!

गुरुकुल आषाढ़ १९७१ बालकृष्ण

# विषय सूची


## अध्याय १

राज्य का उद्भव

## अध्याय २

राज्य की क़िस्में

## अध्याय ३

भारत में एक सत्ता का वंशागत राज्य रहा है।

## अध्याय ४

यह एक सत्ता का राज्य पैत्रिक बनाया गया था।

## अध्याय ५

इस राज्य के दोष और प्रजातन्त्र राज्य के लाभ।

## अध्याय ६

वेदोक्त राज्य।


—०—

# अध्याय १

## राज्य संस्था का आरम्भ ।

राज-उद्भव के विषय पर योरुप के विद्वानों ने आज तक भिन्न २ सम्मतियाँ प्रकट की हैं उन्हें सँक्षेप से यहां बताया जाता है, और साथ ही उन की तुलना आर्य ऋषियों के सिद्धान्तों से की जाती है ।

## सुवर्ण काल का सिद्धान्त ।

(क) सँसार के आदि में सुवर्णकाल था उसके व्यतीत होने पर जब लोगों के आचार भ्रष्ट हो गये तो राज्य का उद्भव हुआ—अतः राज्य एक आवश्यक बुराई है । बलन्टशिली साहब ने यूं लिखा है:—

The popular imagination has dreamed of the golden age of Paradise, in which there were as yet no evils and no injustice, while all enjoyed themselves in the unlimited freedom and happiness of their peaceful existence. Every one was like another. Then too there was neither ruler nor subject, nor Magistrate nor judge, nor army, nor taxes. In comparison with such an ideal the later political

condition of man must appear perversion and de cline. Thus the state was thought of as a necessary evil, at least as an institution of com- pulsion and constraint to avoid greater evils.

यही विचार हमें महाभारत के शान्ति पर्व में मिलता है जो आङ्गल भाषा में यूं है—

At first there was no sovereignty, no king, no punishment, and no punisher. All men used to protect one another piously. As they thus lived, Bharat, righteously protecting one another, they found the task in time to be painful. Error then possessed their hearts. Having become subject to error, their virtue began to wane, they became covetous, lustful and wrathful.

Bhisma Parva, chap-59.

अर्थात, "भीष्म बोले, हे पुरुषसिंह युधिष्ठिर ! पहिले सत्ययुग में जिस प्रकार राजस्व स्थापित हुआ था, उसे मैं कहता हूं । चित्त लगाके सुनो । पहिले राजा व राज्य, दण्ड कर्त्ता और दण्ड कुछ भी न था। प्रजा ही धर्म की अनुगामिनी हो कर आपस में एक दूसरे की रक्षा करती थी । हे भरत ! इसी भान्ति एक दूसरे की रक्षा करते हुए ये सब कोई, क्रम से

थक गये और उनका चित्त भ्रमित होने लगा, तब ज्ञान का लोप हुआ, धर्म कार्य्य नष्ट हुआ और वे लोग मोह तथा लोभ में रक्त होकर विषय वासना और इन्द्रिय सुख आदि कामनाओं में लगे। ऐसे मनुष्यों को नियम में रखने के लिये ब्रह्मा ने विरजस नामी राजा राज करने के लिये भेजा।

## आदर्श दशा

स्पष्ट है कि सत्ययुग में कोई राजा और प्रजा की संस्था न थी। सब लोग स्व २ धर्मों में स्थित थे तथा सुख पूर्वक जीवन व्यतीत करते थे। सब अपने अधिकारों की अवधि में रहते थे और अन्यों के अधिकारों पर आक्रमण न करते थे। बस-इसी, में एक दूसरे की परस्पर रक्षा होती थी। धार्मिक जनों के लिये किसी राजा, शासक, दण्ड देनेवाले प्रधान की आवश्यकता न थी और न अब है। हां, जब संमोह में पड़कर नर नारियों में अधार्मिक वृत्ति आई और वे एक दूसरे के अधिकारों पर आक्रमण करने लगे, पापाचरण में जीवन व्यतीत होने लगा तो उन लोगों

को अपनी २ अवधि में रखने के लिये एक शासक व राजा की आवश्यकता हुई। यदि प्रजा न्याय तथा धर्मानुकूल जीवन यात्रा करे तो राजा की आवश्यकता नहीं। सत्ययुग में ऐसा ही था और पश्चिम के कई विचारक भावी में ऐसी ही विराजता लाना चाहते हैं क्यों कि पूर्वी और पश्चिमी ऋषियों ने राज संस्था को (The Government is a necessary evil) एक आवश्यक बुराई कहा है।

(ख) योरुप में दूसरा सिद्धांत हाव्ज़ और सिपीनोज़ा नामी महाशयों का चलाया हुआ है, वह यह कि आरम्भिक अवस्था निरन्तर संग्राम की अवस्था थी, उसमें मनुष्य मनुष्य से लड़ता रहता था—There was war of every one against every one–Hobbes. हाब्ज़ के विचारों को भारत में मनु भगवान् ने सहस्रों वर्ष पूर्व प्रकट किया था। उनके वाक्य हैं कि जब २ राजा लोग अपराधियों को दण्ड नहीं देते तब २ बलवान लोग निर्बलों को इस प्रकार खा जाते हैं जिस प्रकार कि मांसाशी शूलों पर मछलियों को भूनकर खाजाते हैं, जैसे कि कौवा पुरोडाश को खाजाता है और कुत्ता हवि उठा ले जाता है। तथा नीच मनुष्य उच्च और

उच्च मनुष्य नीच हो जाते हैं। वस्तुतः सब मनुष्यों में उपद्रव हो जाता है और सब वर्ण टूट जाते हैं।

अब राष्ट्र उद्भव के तीसरे सिद्धांत को लीजिये।

(ग) राज दैवी संस्था है—The State is a Divine Institution. According to the theocratic conception of the Middle ages the chiefs of Christendom are the representatives of God himself. Rulers ( Pope, Emperor, and kings, ) have thus in their own persons the fulness of authority." Stahl. अर्थात् राज्य एक परमात्मा की ओर से दी हुई संस्था है। राजागण परमात्मा के प्रतिनिधि हैं। परमात्मा ने अपने पुत्रों के हितों के लिये स्वयम् इस राज्य रूपी संस्था को चलाया है। यहूदियों और ईसाइयों ने इस विचार की पुष्टि की और प्रत्येक स्वेच्छाचारी राजा ने इस सिद्धांत को पुष्ट किया, क्योंकि इस से उनके मनोरथों की सिद्धी हो सकती थी। योरूप के राजाओं के दैवी अधिकार Divine Rights भी इसी सिद्धान्त पर आश्रित हैं।

किंतु मनु महाराज ने लिखा है—बिना राजा के इस संसार में खिलबली मच जाती—इस कारण सब की

रक्षा के लिये ईश्वर ने राजा को उत्पन्न किया। इन्द्र, वायु आदि ७ देवताओं के अंशों का निचोड़ निकाल कर राजा बनाया, और चूंकि देवों के अंशों से राजा बना है, इस लिये वह अपने तेज से सब प्राणियों को दबाता है। राजा का तेज, देखने वालों की आंखों और मनों को सूर्य के समान असह्य होता है और पृथिवी पर कोई पुरुष राजा के सामने होकर नहीं देख सकता। मनुष्य जानकर बालक राजा का भी अपमान करना उचित नहीं क्योंकि वह एक महा देवता मनुष्य रूप से स्थित है। एवम् "न राज्ञामघदोषोऽस्ति" राजों को कोई पाप नहीं लगता यह ठीक वही वाक्य हैं जो योरुप में चिरकाल तक प्रचलित रहे और अब तक इंग्लैंड की राजनीति की नींव है—The king can do no wrong—राजा कोई अपराध नहीं कर सका। योरूपीय बिचारकों के शब्दों में दैवी अधिकारों का सिद्धान्त यह है:—

इस सिद्धांत के अनुकूल जाति एक बड़ा परिवार है, जिस में राजा ईश्वर की ओर से निश्चित शासक है। राजा का कर्तव्य पितावत शासन करना है। प्रजा का कर्तव्य उस राजा की आज्ञा इसी प्रकार

पालन करना है जैसे पुत्र पुत्रियाँ पिता कीआज्ञाओं का पालन करती हैं। यदि राजा भूलें करता है, क्रूर अन्यायी, अत्याचारी है तो प्रजा का ऐसा ही दुर्भाग्य है, किसी अवस्था में उस राजा के विरुद्ध विरोध करना उचित नहीं। परमात्मा के सामने ही वह राजा उत्तरदाता है और प्रजा पर किए हुए अत्याचारों का बदला अपने प्रतिनिधि राजा से ईश्वर ले लेता है अतः प्रजा दल को सदैव संतुष्ट रहना चाहिये। वंश परम्परा का राज ही नियम बद्ध है। प्रजा के लिये अपने शासकों का निर्वाचन करना या स्वयम् शासन में भाग लेना अस्वाभाविक है। राज-शक्ति ईश के नियमों के अनुकूल है अतः कोई साँसारिक शक्ति उस की बाधक नहीं होसकती, जो वस्तु वा संस्था मनुष्य के लिये स्वाभाविक है वह दैवी अधिकार से यहां विद्यमान है, राज मनुष्य के लिये स्वाभाविक है अतः राज दैवी अधिकारों वाला है। अतः राजाओं को देव समझना चाहिये। इस कारण एक आङ्गल ने कहा है Divinity that doth hedge a king–राजा पर दिव्य गुणों का आवरण है। एक अन्य कवि ने यह विचित्र शब्द लिखे हैं:—

Not all the water in the rough rude sea,
Can wash the balm off from an anointed king.
The breath of worldly men can not depose
The deputy elected by the Lord

अर्थात् उच्छृंखल सागर का सम्पूर्ण जल भी अभिषिक्त राजा की सुगन्धि को नहीं धो सकता। सांसारिक मनुष्यों का वचन परमात्मा से निर्वाचित प्रतिनिधि को पदच्युत नहीं कर सकता।

इस पुस्तक के अन्त में हम दिखावेंगे कि यही विचार यद्यपि भारत में भी सहस्रों वर्षों तक प्रचलित रहे तथापि वे वेदोक्त आज्ञाओं के सर्वथा विरुद्ध हैं। राजा प्रजा से निर्वाचित सभापति पुरुष है न कि ईश्वर का प्रतिनिधि देवता, और वह पदच्युत भी किया जा सकता है॥

उक्त दैवी सिद्धान्त ने ही ईसाइयों पर सहस्रों अत्याचार करने वाले रोमन बादशाह क्रूर नीरो से यह कहलवाया:—Let every soul be in subjection to the higher powers; for there is no power but of God; and the powers that be, are ordained of God."

प्रत्येक आत्मा को उच्च शक्तियों के आधीन रहना चाहिये क्योंकि इस संसारमें सर्व शक्ति दैवी है

और जिनके स्वत्व में राज शक्ति है-उन्हें परमात्मा की ओर से यह शक्ति मिली है।

ऐसे शब्द नास्तिकपन-नास्तिकत्व के साक्षी हैं और परमात्मा के पुत्रों की हत्तक करने वाले भी साथ हैं। किन्तु इन सब का सरोवर कदाचित् राजोदय के दैवी सिद्धान्त हो सकते हैं।

इसी दैवी सिद्धान्त ने सब राज कर्मचारियों और विशेषतया कई राजाओं को बे जिम्मेवार, अनुत्तरदाता राक्षस बनादिया। यही विचार था कि जिसने फ्राँस के प्रसिद्ध स्वेच्छाचारी बादशाह- लूई चौदहवें से कहलवाया कि

We Princes are the living images of Him, who is all holy and all powerful. हम राजागण उस पवित्र और सर्वशक्तिमान् परमेश्वर की जीवित मूर्तियां हैं।

इसी लूई के मन्त्री बूसें—(Bossent) ने कहा कि Kings are the ministers of God and his vicegerents on earth. The Throne of a King is not the throne of a man, but the throne of God himself. The person of Kings is sacred and it is sacrilege to harm them. They are Gods and partake in some fashion of the divine independence.

इन वाक्यों का अभिप्राय यह है कि " राजागण ईश्वर के मन्त्री हैं, वे ही उस के प्रतिनिधि इस भूमि पर हैं, राजा का सिंहासन मनुष्य का स्थान नहीं समझना चाहिये बल्कि स्वयम् ईश का सिंहासन समझो। राजा की व्यक्ति पवित्र होती है, अतः उसे हानि पहुँचाना पाप है। वे देव हैं और ईश्वरीय स्वतन्त्रता का कुछ अँश उन में भी पाया जाता है "।

सिकन्दर महान् ने इसी सिद्धान्त की शरण ली। उसने अपने तँई ' Son of Zeus' द्यौःपितर ईश का पुत्र कई बार कहा और प्रजाजन भी उसे देव पुत्र कहते थे। कभी वह अपनी उत्पत्ति हर्क्लीज़ तथा पर्सियस के वंश से निकालता था। उसकी माता ने सिकन्दर को यही शिक्षा दी थी कि वह एक देवता की सन्तान है न कि मनुष्य का पुत्र है। ईरान में यही सिकन्दर अपने आप को देवताओं के समान पुजवाता रहा। ऐतिहासिक ग्रंथों के आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि उसने यूनान के नगरों में उद्घोषित किया कि उसे देवों की भांति पूजा जावे। किन्तु याद रहे कि सिकन्दर का यह विशेष हाल न

था। सब बड़े महाराजाओं ने यही विश्वास प्रकट किया है। ज़र्कशीज़ ने समुद्र को चाबुक लगवाये क्योंकि उसने उसकी सेना को पार होने से रोका। इसी प्रकार सीज़र महान को देव मान कर पूजा जाता था। चंगेज़ तैमूर और नादिर शाह भी अपने तईं परमात्मा का प्रतिनिधि समझते थे! जापान और चीन के बादशाह भी दैवीवंश के समझे जाते हैं!! वस्तुतः राजा के देवता होने का विचार मानव जाति के रगो रेशे में घर किये हुए है और हमारे शास्त्रों ने वेद विरुद्ध उसे नियमानुकूल ठहराया है। पर इस सिद्धान्त के बहुत बुरे परिणाम हुए हैं।

वस्तुतः इस विचार ने इस संसार में असंख्य उपद्रव मचवाये हैं। सैंकड़ों के गले कटवाये हैं। प्रजा को पीड़ित करवाया है, राजाओं को गर्वित किया है और स्वतन्त्रता देवी का निरादर कर के उसे इस भूमि से वहिष्कार कर दिया है। परन्तु योरूप में इस सिद्धान्त की सत्ता से निकलने के लिये प्रजा ने सिर तोड़ यत्न किया। राजा गण तथा प्रजावर्ग दोनों को ही असह्य कष्ट उठाने पड़े और प्रजावर्ग ने स्थान २ पर आक्रान्तियों के बलवान तर्क से यह सिद्ध कर

दिखाया कि अपने आपको शासन करने का प्रजा को दैवी तथा अदत्त अधिकार Divine and inalien-able right है कोई राजा या पोप उस दैवी अधि-कार को प्रजा से नहीं छीन सकता। इन्हीं आक्रा-न्तियों के कारण आज योरुप और अमेरीका में प्रजा-तन्त्र राज है, और राजा के दैवी अधिकार की क्षति है किन्तु भारत में सहस्रों वर्षों तक वेद की आज्ञा विरुद्ध राजाओं के दैवी अधिकार माने गये और एवंमुसल-मानादि राजाओं को भी देव तथा पितर मानकर प्रजा-वर्ग पूजते रहे, इस कारण यहां स्वतन्त्रता का नाम नहीं।

(घ) Theory of Contract—सामूहिक निश्चय का सिद्धान्त—( Hobbes ) हाब्ज, ( Locke ) लाक और ( Rousseau ) रूजो का यह सिद्धान्त है—उनका परस्पर कुछ २ भेद है किन्तु यहां पर यही कहना है कि आदिम अवस्था में रहने वाले लोग जब दुःखसहन न कर सके तो एक स्थान पर मिल कर विचारने लगे। अन्त में उन्हों ने अपने ऊपर एक शासन करने वाली शक्ति मानली, जिसे कुछ अधिकार दिये। इस सिद्धा-न्त का योरुप में बड़ा बल रहा है, किंतु विचित्र है

कि चाणक्य अर्थशास्त्र (में ३०० वर्ष ईसा पूर्व) यही विचार मिलता है॥

"मात्स्य न्यायाभिभूता:
प्रजा मनुं वैवस्वतं राजानं चक्रिरे।
धान्यषड्भागं पण्य दश भागं हिरण्यं चास्य
भागधेयं प्रकल्पयामासु:" ॥

जब मछलियों की भांति संसार के लोग एक दूसरे को खा रहे थे—तो उन्होंने मिलकर विवस्वत के पुत्र मनु नामी महाशय को अपना राजा बनाया और उसे कहा कि हम तुम्हें कृषि-जन्य पदार्थों का छटा भाग और व्यापार सुवर्णादि का १० वां भाग दिया करेंगे और तू हम पर राज किया कर।

इस प्रकार स्पष्ट हुआ कि राज्य के उदय होने के सम्बन्ध में योरुप में जो विचार किये गये हैं, वे ही ईसा के जन्म से कई सौ वर्ष पूर्व हमारे ऋषि अपनी पुस्तकों में लेखबद्ध कर चुके थे। अत: योरुपीय विद्वानों के विचार हमारे पूर्वजों के विचारों के छाया मात्र हैं॥

# अध्याय २

## राज्य की क़िस्में ।

जहाँ तक मैंने प्राचीन ग्रंथों का अध्ययन किया है—उन से यही पता लगता है कि एक सत्तात्मक राज्य के अतिरिक्त राज की किसी अन्य क़िस्म का वर्णन स्मृतियों में नहीं आया, किन्तु ऐतरेयब्राह्मण ने कई क़िस्म के राज्यों का उल्लेख किया है जैसेः—

(१) गङ्गा यमुना के मध्यमवर्त्ती इलाक़े में साम्राज्य Empire— सम्राट् Emperor.

(२) कुरु, पंचाल, वश, उशीनर जातियों के नृपति राजा kings स्वेच्छाचारी राज्य Despotism.

(३) पश्चिम की नीच्य तथा अपाच्य जातियों में स्वराज्य— परिमित अधिकार का राज्य Limited Monarchy.

(४) उत्तर कुरु तथा उत्तर मद्र जातियों में विराट प्रजातन्त्र राज्य, Republic or Democracy.

(५) समुद्र से घिरी हुई पृथ्वी का पूर्ण राज्य एकराज्य Universal Empire.

इस प्रकार Monarchy, Limited monarchy, Republic, Empire and Universal Sovereignty के दृश्य दीख पड़तेहैं । यूनान में अरस्तु ने सब से पहिले राज्य के ६ प्रकार बताए जो यह हैं:—

Monarchy=प्रजा के हितार्थ एक सत्ता का राज,
Aristocracy=प्रजा के हितार्थ धनियों का राज,
Polity=समाज के हितार्थ प्रजा का राज,
Despotism =प्रजा के अनहितार्थ एक सत्ता का राज,
Oligarchy =प्रजाके अनहितार्थ चंद धनियों का राज,
Democracy=समाजकी बुराईके लिये प्रजा का राज ।

भारतवर्ष में कभी धनियों का राज नहीं रहा। अति प्राचीन काल में महात्माओं ब्राह्मणों और विद्वानों का राज्य में अधिक भाग रहा और चूंकि प्रायः यह महाशय निःस्वार्थ धर्मात्मा वेदपाठी नीति निपुण पुण्यात्मा निर्लोभी और परोपकारी होते थे, इस कारण इन से प्रजा को कभी दुःख प्राप्त नहीं होता होगा । अतः aristocracy ( प्रजा के हितार्थ धनियों का राज्य ) Oligarchy (समाज की बुराई के लिये धनियों का राज) की क़िस्में

भारतवर्ष में नहीं मिलतीं। छोटे २ विराट Republics भारत में चिरकाल तक रहे हैं, क्योंकि सिकन्दर के समय तक ऐतिहासिक उनकी साक्षियां देते हैं, और रीज़ डेविड साहब ने Budhistic India में माना है कि शाक्यों में प्रधानों का नाम ही राजा था, कि वहां प्रजातंत्र राज्य ( Republic ) था। किन्तु आज कल के प्रजातंत्रराजों और उस समय के प्रजातंत्रराजों में बड़ा अंतर था * ।

रीज़ डेविड्स इस शाकीय जाति की शासन प्रणाली और विचार व्यवस्था के विषय में अपनी पुस्तक बुधिस्टिक इंडिया में ये लिखते हैं:—

The administration and the judicial business of the ( Sakiya ) clan was carried out in public assembly at which young and old were alike present in their common Mote hall ( Santhagara ) at Kapilavastu. It was at such a parliament or palare,

---

* हौग महाशय के किये हुए उपरोक्त अर्थों में कइयों को संशय है क्योंकि संस्कृत भाषा में विराट के अर्थ बिना राजा के नहीं होते, इस बात की साक्षी भी एक प्राचीन ग्रन्थ शुक्रनीति के प्रथमाध्याय के १८६

that King Pasenadi's proposition ( of asking a daughter of the Sakiya family as wife) was dis cussed. When Ambatha goes to Kapilavastu on business he goes to the Mote Lall, where the Sakiyas were then in session. And it is to the Mote hall

---

व १८७ श्लोक में मिलती है कि राजाग्य की भिन्नता से शासकों के भिन्ननाम होते थे जैसे:—

| | | |
|---|---|---|
| सामंत | ८३३३३ | २५०००० रु० आय वाला |
| माण्डलिक | २५०००० | ८३३३३३ |
| राजा | ८३३३३३ | १६६६६६६ |
| महाराजा | १६६६६६६ | ४१६६६६३६ |
| स्वराट | ४१६६६६६ | ८३३३३३३ |
| सम्राट | ८३३३३३३ | ८३३३३३३ |
| विराट | ८३३३३३३३ | ४१६६६६६६६ |
| सार्वभौम | ४१६६६६६६६६ | .... |

इससे यह स्पष्ट हुआ कि ऐतरेय ब्राह्मण भी एक सत्ता का राज्य बताता है। केवल जातियों के छोटे बड़े होने से उनके शासक छोटे बड़े होते थे किन्तु हौग महाशय के अर्थ ठीक हैं क्योंकि तैत्तिरीय ब्राह्मण ने स्वराट् आदि के अर्थ वही किये हैं जो हम ने ऊपर दिये हैं। देखो २ का० ७ प्र० ७ अनु० ।

of the Mállas that Ananda goes to announce the death of the Buddha, they being in session then to consider that very matter.

अर्थात् शाकीय जाति का शासन और विचार सम्बन्धीय कार्य कपिलवस्तु में सार्वजनिक सन्थागार में प्रकाश्य संघ में होता था जिस में छोटे बड़े समान भाव से उपस्थित होते थे। ऐसी ही पार्लियामैन्ट में राजा पसेनादि के (शाकीय वंश की कन्या से विवाह करने के) प्रस्ताव पर विचार हुआ। जब अम्बठ्ठ कार्य वंश कपिलवस्तु गया, तो वह सन्था-गार में गया, जहाँ शाकीय लोग राज काज कर रहे थे। और बुद्ध की मृत्यु की सूचना देने के लिये आ-नन्द मल्लों के सन्थागार में गया था, जो उस समय उसी विषय पर विचार कर रहे थे। इन प्रजातन्त्र राज्यों के मुखिये राजा ही कहाते थे। प्रो० ह्रीज़-डेविड्स भी लिखते हैं:—

A single chief how and for what period chosen, we do not know, was elected as office holder, presiding over the sessions, and if no sessions were sitting, over the state. He bore the title of Raja, which must have meant some thing like the Roman consol or the Greek archon. * * * But we hear

nowhere of such a triumvirate as bore corresponding office among the Lichhavis nor of such acts of kingly sovereignty as are ascribed to the real kings mentioned above. But we hear at one time that Bhadiya, a young cousin of the Buddhas, was the Raja and in another passage, Suddhodana, the Budha's father ( who is else where spoken of as a *simplė citizen Suddhodana the sakiyen* ) is called ths Raja ( p. 19 )

अर्थात् एक मुखिया कैसे और किस अवधि के लिये चुना जाता था यह हमें मालूम नहीं। कार्य-कर्त्ता निर्वाचित होता था जो सभा के ( अधिवेशनों में ) अध्यक्षत्व करता था और यदि अधिवेशन नहीं होते थे तो राज काज चलाता था। इस की पदवी राजा थी, जो कुछ कुछ रोमनों के कन्सल या यूनानियों के आर्कन के समान था। पर लिच्छवियों में ऐसे पद पर एक त्रिकूट या त्रिमूर्ति हुआ करती थी उसका जोड़ कहीं नहीं मिलता, और न राजा के समान राजत्व के वैसे कार्यों का ही पता चलता है जो ऊपर लिखे वास्तविक राजाओं के विषय में कहे जाते हैं। पर हम सुनते हैं कि, एक समय बुद्ध का भा-दिया नामक जवान चचेरा भाई राजा था, और

दूसरे स्थल पर बुद्ध का पिता शुद्धोदन ( जो अन्यत्र शाक्रीय शुद्धोदन साधारण नागरिक बताया गया है ) राजा कहा गया है ” ।

इस अध्याय का अन्तिम परिणाम यह है कि ( १ ) ऐत्तरेय ब्राह्मण में राज्यकी कई किस्मों का वर्णन है जिन की पुष्टि तैतिरीय ब्राह्मण से मिलती है। हां, स्मृतियों तथा अन्य संस्कृत ग्रन्थों में जहां २ राजके बारे में वर्णन आया है वहां राज की किस्में नहीं बताईं। (२) समय समय पर विराष्ट्र भारत में अवश्य थे जैसे बौद्धों के इतिहास से प्रकट होता है या जैसे मैगैस्थनीज़ की निम्न साक्षि से भी ज्ञात होता है:–From the time of Dionysos to Sandrakottos, the Indians counted 153 kings and a period of 6042 years. But among these a republic was thrice established. ” Mc. Crindle's Ancient India. p. 203. )

अर्थात् दीयोनीसस के समय से चंद्र गुप्त के काल तक भारतीय लोग १५३ राजाओं तथा ६०४२ वर्षों की गणना करते हैं। परन्तु इस समय में तीन वार विराष्ट्र भी स्थापित हो चुका था” ॥

———

# अध्याय तीसरा।

---

## वंश परम्परा का राज्य।

अपने परिमित ज्ञान के आधार पर भी मैं विश्वास पूर्वक कह सकता हूँ कि आर्यों में वंश परम्परा की रीति प्रचलित थी। यहां आम तौर पर प्रजा तंत्र राज्य का अभाव था। साथ ही प्रजा की ओर से एक योग्य पुरुष का राजा के तौर पर चुने जाने की रीतिका भी प्रायः अभाव था। राजाका पुत्र या अन्य सम्बन्धी ही राजा बन सकते थे, उसके वंशजों के अतिरिक्त किसी पराये वंश के पुरुष को राजा नहीं बनाया जाता था.

इस रीति की हानियों का वर्णन तो हम आगे करेंगे परंतु पहले इस विचार को दृढ़ कर लेना उचित होगा कि राज्य वंशागत ही होता था.

निम्न लिखित साक्षियां उपरोक्त कथन की पुष्टि करने वाली हैं:—

१. राजपूतों के ३६ कुलों के इतिहास के देखने से यही विचार दृढ़ होता है।

इनमें से बहुत से अपने आपको सूर्य्यवंशी, चंद्रवंशी, यादववँशी पुकारते हैं अर्थात् श्रीराम, श्रीबुद्ध, श्री-कृष्ण से अपना संबन्ध यह राजगण जोड़ते हैं। अतः स्पष्ट हुआ कि आजकल और मध्यम काल में ही नहीं परन्तु अति प्राचीन काल में भी यह वँश परम्परा की रीति प्रचलित थी, अन्यथा राम बुद्ध और कृष्ण के वँशों में ही सहस्रों वर्षों तक राज नहीं रह सकता था। जिन सज्जनों का यह मत हो कि प्राचीन काल में राजा गण प्रजा की ओर से चुने जाते थे उन्हें मानना होगा कि राजपूत राजाओं की वँशावलियां अशुद्ध हैं-यह भाटों के मनों की कल्प-नाएं हैं, इन में सत्यता का अंश नहीं—अर्थात् कोई राजपूत वंश सूर्यवंशी, चन्द्रवंशी, और यादव-वंशी नहीं। हम तो इन शूरवीर, युद्धरसिक, गौ और ब्राह्मणों के पालक, एक घोर काल में हिंदु जाति की लाज रखने वाले कई राजपूत कुलों को उन महात्माओं की संतान मानते हैं क्योंकि वँशगत राज

में ऐसा होना आवश्यक है किन्तु जो वंशागत राज को नहीं मानते, वे एक बड़ी भारी अशुद्धि करेंगे।

( २ ) विष्णु, स्कन्ध, अग्नि आदि पुराणों में जो वंशों के वृक्ष दिये हैं, उन से भी यही प्रकट होता है। 'तस्य पुत्रः, तस्य पुत्रः' के शब्द प्रायःसर्वत्र पाये जाते हैं। क्या यह साक्षि भी अशुद्ध है ? यदि इसमें कम बल प्रतीत हो तो अन्य प्रमाण लीजियेः—

( ३ ) रामायण की साक्षि इस विषय में बहुत प्रमाणिक समझनी चाहिये। पुराणों और कविवर कालिदास कृत रघुवँश से यह बात स्पष्ट है कि रघु के वँश में परम्परागत राज्य रहा, किन्तु यदि आदि कवि ऐतिहासिक वाल्मीकि भी अपने समय की यह साक्षि देता हो तो हम अति प्राचीन काल में चले जाते हैं और वहां पर भी वंशागत एक सत्तात्मक राज्य पाते हैंः—

( क ) श्रीराम के विवाह के समय सूर्य्यवंशी राजाओं और जनक के पूर्वजों की सूचियां सुनाई जाती हैं। इन दोनों सूचियों का वर्णन रामायण के प्रथम काण्ड के ७० और ७१ सर्गों में आया है-वहां भी

"तस्य पुत्रः तस्य पुत्रः" बारम्बार लिखा गया है. अतः वंश परम्परा का राज्य है। यदि केवल योग्य पुरुषों को राजा चुना जाता था तो सब पुत्र ही राजा कैसे हो सके ? वंश से बाहर किसी योग्य को राज क्यों न मिला ?

( ख ) महाराज रामचन्द्र जी का आत्मत्यागी भाई भरत अपनी माता कैकेयी पर क्रोधित होता हुआ यह स्मरणीय वाक्य कहता है—

अस्मिन्कुले हि सर्वेषां ज्येष्ठो राजाऽभि षिच्यते।
अपरे भ्रातरस्तस्मिन प्रवर्तन्ते समाहिताः ।
सततं राजपुत्रेषु ज्येष्ठो राजाऽभिषिच्यते ।
राज्ञामेतत्समंतत् स्यादिक्ष्वाकूणां विशेषतः

२. ७३. २०. २२.

अर्थात् इस कुल में सब से बड़ा भाई ही राज्याभिषिक्त किया जाता है, अन्य सब भाई उसके आधीन कार्य करते हैं। यह बात सब राजाओं में समान है कि सदा राजपुत्रों में बड़ा पुत्र ही राज्याभिषिक्त किया जाता है और फिर इक्ष्वाकु वंश में वह रीति विशेषतः प्रचलित है।

(ग) स्थान २ पर लक्ष्मणजी श्रीराम के प्रति यह शब्द कहते हैं:-

लोकविद्विष्टमारब्धं त्वदन्यस्याभिषेचनम् ।
२. २३. १०

आर्य्यपुत्राः करिष्यन्ति वनवासं गते त्वयि ।
२. २३. २५

प्रजा निक्षिप्य पुत्रेषु पुत्रवत् परिपालने २. २३ २६

अर्थात् तेरे से अन्य का अभिषेक करना लोकरीति का द्वेष करना है ! तेरे संन्यासी होने पर तेरे पुत्र राज्य करेंगे; पुत्रवत् प्रजापालन में प्रजाओं को निश्चिन्त करके राजा वनवास करे ।

(ङ) किन्तु मन्थरा के शब्द बड़े ही स्पष्ट हैं- वह कहती हैं:-

न हि राज्ञः सुताः सर्वे राज्ये तिष्ठन्ति भामिनि ।
स्थाप्यमानेषु सर्वेषु सुमहाननयो भवेत् ॥
तस्माज्ज्येष्ठे हि कैकेयि राज्यतन्त्राणि पार्थिवाः ।
स्थापयन्त्यनवद्याङ्गि गुणवत्स्वितरेष्वपि ॥
२. ८. २३

अर्थात् हे कैकेयि ! राजा के सर्व पुत्र राज्य नहीं किया करते, यतः इस से हानियें होती हैं- अतः ज्येष्ठपुत्र ही राज्याधिकारी होता है।

अब सिद्ध है कि भारत के अतीव प्राचीन इतिहास में भी वंशपरम्परा का राज्य था। शासकवंश नहीं बदलता था—योग्यतम पुरुष ही शासक नहीं बनाए जाते थे। राजा का ज्येष्ठपुत्र ही पिता की मृत्यु पर राज्य का भागी होता था। अब इस विषय पर धर्मशास्त्र-स्मृति व कानून शास्त्र की साक्षी लीजिये। कानूनों-राजनियमों के अनुसार ही सब काम होते हैं-यदि कानून वंशपरम्परा के राज्य का हो, तो वंशागत राज्य होता होगा, देखिये:

(क) शुक्रनीति से भी यही प्रामाणित ठहरता है-

यावद्गोत्रे राज्यमस्ति तावदेव स जीवति।

(४. ७. १८)

अर्थात् जब तक गोत्र में राज्य रहता है तब तक ही वह राजा जीवित रहता है।

(ख) राजा की मृत्यु के पश्चात् राज्य किसको मिले इस विषय में शुक्राचार्य निम्न लिखित नियम देते हैं:—

कल्पेद् युवराजार्थमौरसं धर्मपत्नीजम्।
स्वकनिष्ठं पितृव्यं वानुजं वाग्रजसम्भवम्॥
पुत्रं पुत्रीकृतं दत्तं यौवराज्येऽभिषेचयेत्।
क्रमादभावे दौहित्रं स्वप्रियं वा नियोजयेत्॥
२. १. १४—१६

अर्थात् राजा क्रमशः अपने असली पुत्र, छोटे भाई, छोटे चचे, बड़े भाई के पुत्र, पुत्र बनाये हुए पुरुष, दत्तक पुत्र, पुत्री के पुत्र अथवा अपने किसी प्यारे को युवराज के लिये अभिषिक्त करे. भला पूछिये तो सही कि राजा को क्या अधिकार है कि वह अपने पश्चात् होने वाले राजा का निर्वाचन करे? फिर यही नहीं कि देश में योग्यतम सज्जन पुरुष वा देवी की ओर निर्देश करे बल्कि अपने वंश से ही उक्त नियम के अनुसार राजा बनावे। 'अन्धा बांटे रेवड़ियां फिर फिर अपनों को दे' वाला सिद्धान्त यहाँ काम करता है!

( ग ) यदि किसी राजा की सन्तान न होतो

दत्तक पुत्र लेने की रीति हमारे शास्त्रकारों ने आवश्यक ठहराई है और इस रीति का प्रचार अब तक हमारे आर्य राजाओं में चला आता है, यथा-शुक्रनीति (२.३३) में लिखा है कि:—

"प्रजानां पालनार्थं हि भूपो दत्तन्तु पालयेत्"

अर्थात् राजा पृथिवी और प्रजा की रक्षार्थ दत्तक पुत्र का परिपालन करे।

हम इसे अत्यन्त घृणित रीति समझते हैं क्योंकि इस नियम के अनुसार राज्य राजा की जायदाद समझा जाता है और जिस प्रकार अपनी जायदाद के दान देने और व्यय करने में सब को अधिकार होता है वैसे ही राज्य के दान करने का अधिकार राजाओं को मिला है। छोटे २ बालकों को जिन के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं होता और जो आम तौर पर नीच लोगों के पुत्र होते हैं- गोद में ले लिया जाता है। जो राजा पुत्रहीन होते हैं, अपने वंश में राज्य रखने के लिये दत्तक पुत्र ले लेते हैं—राजमहलों में पले हुए, प्रायः नीच माता पिताओं के पुत्र होते हुए, ऐसे दत्तक कभी राज्य के योग्य नहीं हो सकते,

किन्तु भारतवर्ष में अति प्राचीनकाल से लेकर अब तक यह रीति प्रचलित रही है, और इस के कारण जो सुशासन का अभाव रहा होगा उस का अनुमान पाठक स्वयं लगा सकते हैं यहां वर्णन की आवश्यकता नहीं।

## (५) महाभारत की साक्षियां:—

इस की पुष्टि में अन्य घटनाएं भी देनी आवश्यक हैं। (i) आप को ज्ञात है कि महाराज शान्तनु भीष्म के पिता का प्रेम एक मछलीगीर की कन्या सत्यवती से हो गया था। मछलीगीर स्व-कन्या देने को तभी तैयार हुआ जब भीष्म राज्याधिकार त्याग देवे। भीष्म ने ऐसा करना मान लिया किंतु मछलीगीर ने फिर कहा कि माना कि भीष्म राज्य के लिये झगड़ा नहीं करेगा, किन्तु उसके पुत्र झगड़ा कर सकते हैं—इस पर पिता की इच्छा पूर्ण करने के लिये भीष्म ने आयुःपर्यन्त ब्रह्मचारी रहना स्वीकार किया और शन्तनु का सत्यवती से विवाह होगया। सज्जनो! विचारिये कि यदि योग्य पुरुष ही राजा चुने जाते थे तो ऐसा प्रण लेने की क्या ज़रूरत थी?

(II) आगे भी यही साक्षी मिलती है। सत्य-वती का पुत्र विचित्रवीर्य क्षयरोग से निःसन्तान मर गया, तो उस के वंश में राज्य रखने के लिये विचित्र-वीर्य की दो पत्नियों से ही व्यास ऋषि ने नियोग करके तीन पुत्र--धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर नामी पैदा किये। यदि वंशपरम्परा की रीति नहीं थी तो ऐसे नियोग करने की क्या ज़रूरत पड़ी ?

(III) फिर महाभारत युद्ध का एक कारण यही था कि ज्येष्ठ पुत्र होते हुए धृतराष्ट्र अन्धा होने से यद्यपि स्वयं राज्य नहीं कर सकता था उस के दुर्यो-धनादि सौ पुत्रों ने कहा कि हम ज्येष्ठपुत्र के पुत्र हैं, अतः राज्य करने का अधिकार हमारा है न कि पाण्डु की सन्तान का।

(IV) इस से आगे युद्ध के पश्चात् जिस में अर्जुन का पुत्र अभिमन्यु मारा गया था--पाँचों भाइयों में से उस के ही सन्तान पैदा हुई--किन्तु परीक्षित मरा हुआ पैदा हुआ। तब महाभारत का वर्णन पढ़िये और श्रीकृष्ण ने किस प्रकार राज्यवंश को सदैव बना रखने के लिये परीक्षित को जीवित

किया--ऐसी स्पष्ट घटनाओं और स्मृतियों के आदेशों के होते हुए कौन कह सकता है कि योग्य पुरुषों को ही राजपद के लिये चुना जाता था ?

# अध्याय ४

## एक सत्तात्मक राज्य पैतृक बनाया गया ।

आशा है कि यह बात प्रमाणित हो चुकी है कि हमारे साहित्य, इतिहासों और नीतिशास्त्रों में वंशागत एक सत्तात्मक राज्यप्रणाली का ही वर्णन है ।

प्रतिनिधि राज्यप्रणाली के भिन्न २ रूपों का कहीं वर्णन नहीं मिलता और स्मृतिकार भी उस के विषय में कुछ विचार प्रकट नहीं करते—यदि भारत में व्याप्त तौर पर कभी प्रजातन्त्र राज्य रहा होता तो उस का वर्णन अवश्य होना चाहिये था किन्तु शोकसमाचार यह है कि हमारे नीतिशास्त्र कहीं भी प्रजातन्त्र राज्य का निर्देश नहीं करते। ऐसा प्रतीत होता है कि आजकल का प्रजातन्त्र राज्य उनकी विचार कोटि में भी प्रविष्ट नहीं हुआ। परन्तु देखिये कि यूनान और रोम में प्रजातंत्र राज्य रहा है यह बात

उन के इतिहासों में मिलती है और उन के नीति-शास्त्र भी इसे उत्तम समझते हैं। यद्यपि वह आज कल के प्रजासत्तात्मक राज्य के समान प्रजा का हितवर्धक न था तथापि उन देशों में प्रजा के अधि-कार बहुत थे, राजाओं का अभाव होते हुए प्रजा की ओर से अपने प्रधान चुने जाते थे और वह जीवनपर्यन्त अपने पद पर नहीं रहते थे परन्तु ५, ६ या १० वर्षों तक उनकी स्थिति होती थी, किंतु भार-तवर्ष में उस प्रणाली की साक्षी नहीं मिलती और ऐसा ही पता लगता है कि यहां सदैव एक सत्तात्मक राज्य ही रहा है, किंतु स्मृतिकारों ने राजाओं की शक्ति रोकने के लिये कई एक बन्धन लगाये हैं और उनके स्वेच्छाचार को रोक कर पितावत् राज बनाना चाहा है। इन बन्धनों का हम नीचे वर्णन करते हैं क्योंकि यह बंधन जितने बल-वान् होंगे, एक सत्ता के राज्यकी उतनी कम खराबियां होंगी।

## ( क ) नरक का भय।

अतीव स्वेच्छाचारी राज्य ( absolute ) वा ( Despotic monarchy ) की उच्छृंखलता को रोककर

पैतृक राज बनाने का जो यत्न किया गया है उस में सब से बड़ा बन्धन नरक का भय रक्खा गया है।

राजा के कई कर्तव्य नीतिशास्त्रकारों ने बताये हैं और साथ ही यह आदेश कर दिया है कि जो राजा इन नियमों का पालन नहीं करता वह नरक का भागी होता है. जैसे शुक्रनीति में लिखा है कि-

अरक्षितारं नृपतिं ब्राह्मणं चातपस्विनम्।
देवा घ्नन्ति त्यजन्त्यथधनिकं चाप्रदातारम् ॥
१. १२१

अर्थात् देवगण, प्रजा को पालन न करने वाले राजा और तपस्याविहीन ब्राह्मण और कृपण धनिक को मार डालते हैं और नीचे फेंक देते हैं।

इस से भी अधिक स्पष्ट शब्दों में उपरोक्त विचार को पुष्ट करने वाले अनेक प्रमाण महाभारत के शान्तिपर्व, मनुस्मृति तथा शुक्रनीति में से दिये जा सके हैं। उदाहरण के तौर पर शुक्रनीति का एक वाक्य यहां उद्धृत किया जाता है—

विपरीतस्तामसः स्यात् सोऽन्ते नरकभाजनः ॥
१. ३२

अर्थात् तमोगुणी राजा अन्त में नरक का भागी बनता है। अतः स्मृतियों ने वारंवार आज्ञा दी है कि राजाओं के यह गुण होने चाहियें:—

राजा की योग्यता ज्ञान कर्म और उपासना का ज्ञाता, दण्ड, नीति, न्याय, विद्या और आत्म विद्या में पठित, वार्त्तालाप में चतुर जितेन्द्रिय राजा हो। वह राजा ऐसा निष्पक्ष पाती तथा धार्मिक हो कि प्रिय से प्रिय सम्बन्धी व मित्र को भी दण्ड देने विना न छोड़े। यदि राजा पाप करे तो उसे भी दण्ड मिल सकता है दण्ड के चलाने वाला सत्य-वादी, विचार पूर्वक काम करने वाला, महा बुद्धि-मान्, धर्म काम और अर्थ के तत्त्वों का ज्ञाता राजा वृद्धि को प्राप्त होता है परन्तु विपरीत गुण रखने वाला राजा उसी दण्ड से मारा जाता है। धर्म से विचलते हुए राजा को बंधुसहित दण्ड नाश कर देता है, जिस राजा के राज्य में न चोर, न परस्त्रीगामी, न दुष्ट वचन के बोलने वाला, न डाकू, न राजा की आज्ञा का भङ्ग करने वाला है—वह राजा उस आनंद का

भागी होता है जिसे 'शक्र' नामक सर्वोपरि राजा भोगता है।

जो राजा अज्ञान से, विना विचार किये प्रजा को दुःख देता है वह शीघ्र ही राज्य, जीवन और बांधवों से भृष्ट होजाता है। जैसे शरीर के शोषण से प्राणियों के प्राण चीण होते हैं वैसे राजाओं के भी प्राण राष्ट्र को पीड़ा देने से चीण होते हैं, इस कारण शिकार, जुआ, दिन में सोना, अन्यों के दोषों का कथन, स्त्रीसम्भोग, मद्यपान, नाचना, बजाना, व्यर्थ भृमण, चुगली, साहस, द्रोह, ईर्ष्या, दूसरों के गुणों में दोष लगाना, द्रव्यहरण, गाली देना, कठोरता और विशेषतया लोभ का परित्याग करें। यदि आज कल के सब राजा और विशेषतया भारतवर्ष में देशी रजवाड़ों के अधिपति उक्त व्यसनों का परित्याग करें, तो संसार में सर्व दिशाओं में शान्ति ही शांति के दृश्य दृष्टिगोचर हों, फिर प्रजाएं प्रजातन्त्र राज्य का नाम भी न लें किंतु राजाओं में ऐसे गुणोंकी सत्ता कठिन है—इस कारण प्रजातन्त्र राज्य की आवश्यकता है।

शुक्राचार्य ने राजाओं के जो गुण बतलाये हैं वे

अतीव उत्तम हैं, यदि वह राजाओं में वस्तुतः पाये जावें तो प्रजा सर्व प्रकार से सुखी हो सकती है, यद्यपि इसमें संदेह है कि प्रजातंत्र राज्य से जो शिक्षायें व लाभ प्राप्त हो सकते हैं प्रजा उन्हें ग्रहण करेगी या नहीं। राजाओं के वे गुण संक्षेपतः यहाँ दर्शाये जाते हैं।

१. राजा—पिता, माता, गुरु, भ्राता, बन्धु, धनपति, यम—इन सात व्यक्तियों के गुणों से नित्य युक्त रहे, इनके बिना वह राजा नहीं कहला सकता।

१. ९८

२. न्यायकारी राजा अपने आप को और प्रजा को धर्म, अर्थ, काम से संयुक्त करता है और अन्यायकारी राजा अपने को और प्रजा दोनों को निश्चिततया नष्ट करता है। १. ६७

३. धर्मात्मा राजा देवों का अंश होता है और पापी राजा राक्षसों का भाग होता है और वह धर्मनाशक तथा प्रजा को दुःख देनेवाला होता है। १. ७०

४. यदि राजा सुयोग्य न हो तो प्रजा समुद्र में नाविकरहित नौका के समान डूब जाती है। १. ६५

५. विषयासक्त राजा हाथी की न्याईं बन्धन में फंस जाता है। १. १०१

६. बुद्धिमान् राजा बुरे पुरुषों से प्रेरित हुआ २ भी अधर्म के कार्य नहीं करता, प्रत्युत श्रुति, स्मृति, आचार तथा भली प्रकार सोचने से पता लगने वाले धार्मिक कर्मों को करता है। १. ११२

७. मन, विषयों के लोभ से इन्द्रियों को इधर उधर घुमाता है अतः राजा मन को प्रयत्न से वश में करे। १. ९९

८. उपरोक्त गुण तथा शुक्रनीति में अन्य कई प्रदर्शित गुणों से रहित राजा राक्षसों का अंश होता है और वह नरक का भागी बनता है। १. ८७

ऐसे राजा को तय्यार करने के लिये बहुत सी विद्याओं का पढ़ना अत्यावश्यक है, शुक्राचार्य ने उन की गणना की है:—

राजा सदा आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता दण्ड-नीति इन चारों विद्याओं का अभ्यास करे।

अन्वीक्षिकी में तर्कशास्त्र, वेदान्तादि शास्त्र

शामिल हैं। त्रयी में साङ्ग चारों वेद, मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र, पुराण शामिल हैं।

वार्ता में सूद का व्यवहार, कृषि, वणिज व्यापार और गोरक्षा का ज्ञान होता है। और दण्डनीति में दुष्टों के ताड़नादि का वर्णन होता है। १. १५२--१५७

( ए ) एक सत्तात्मक राज्यपर युधिष्ठिर तथा भीष्म की सम्मति-सज्जनो! आपको ज्ञात है कि धर्मपुत्र युधिष्ठिर और शरशय्या पर लेटे हुए बाल ब्रह्मचारी आत्मत्यागी, भारतके सुपुत्र भीष्मपितामह के मध्य राजाओं के कर्त्तव्यों पर वार्तालाप होता है, वहां अतीव मनोरंजक और शिक्षाप्रद विचार प्रकट किये जाते हैं, एक स्थान पर हमारे लिये उपयोगी प्रश्न युधिष्ठिर महाराज ने किया है। हम ऊपर देख चुके हैं कि मनुस्मृति और शुक्रनीति में कहे हुए गुण राजा में होने कठिन हैं, और ख़ास तौर पर ऐसे राजाओं में जो परम्परा से वंशागत हों, शायद लेशमात्र भी नहीं होसकते। प्रश्न यह है कि क्या हमारे पूर्वज इस कठिनाई को नहीं समझते थे? अथवा समझते तो थे परन्तु वह एकसत्ता के राज्य के अतिरिक्त अन्य किसी राज्य को उत्तम नहीं समझते थे, जो संवाद

आपके सामने पेश किया जाता है उस से दूसरा विचार ही सत्य प्रतीत देता है। देखिये ८५ अध्याय में युधिष्ठिर कहते हैं। हे महाबुद्धिमान् ! मुझ से पूछे हुए विषियों का पूरा २ उत्तर आप की ओर से मिलना चाहिये। आपने राजाओं के जो जो गुण वर्णन किये मुझे मालूम होता है कि वे सब गुण एक पुरुष में विद्यमान नहीं रहसकते।

भीष्म बोले, युधिष्ठिर! तुम बहुत ही बुद्धिमान् हो। तुमने जैसा वचन कहा वह वैसा ही है। एक पुरुष में जो राजाओं के गुण वर्णन किये हैं वे नहीं पाये जा सकते— ऐसे शुभ गुण किसी एक पुरुष में विद्यमान रहने असम्भव हैं। ऐसे सत्स्वभावी गुणधारी पुरुष को बहुत सावधानी से खोज करने पर भी इस लोक में प्राप्त करना अति कठिन है किंतु मैं तुम्हें इस विषय पर कहता हूं कि तुम किन सेवकों को नियत करो"।

सज्जनो! मेरे इस सम्पूर्ण लेख की आत्मा उक्त शब्दों में अन्तर्हित है यदि आपने इन शब्दों के अर्थों को ग्रहण करलिया है तो मैं कृतकृत्य होचुका हूं। यह मेरी ही तुच्छ सम्मति नहीं कि जिस क़िस्म के

गुण हमारे शास्त्रों ने राजाओं में होने आवश्यक ठहराए हैं--वे कदापि उन में नहीं हो सकते और वंशपरम्परा के रीति में उनका लक्षांश भी नहीं दीख सकता। बल्कि सत्यवादी धर्मपुत्र युधिष्ठिर जिन्हें राज्य विषयक सब अनुभव था और विचक्षण, सारासार--विवेकी, सुनीतिज्ञ, बाल ब्रह्मचारी, वेदपाठी, भीष्म पितामह जिन्हें महाराज शन्तनु, विचित्रवीर्य, पाण्डु, धृतराष्ट्र और दुर्योधन आदि के राज्यों का तो पूरा पूरा ज्ञान था और बुद्धिमान् होने से जगत् के अन्य राष्ट्रों की अवस्थाओं से भी परिचय था- इन दोनों की भी यही सम्मति है। आगे चलकर तत्त्ववेत्ता मिल की यही सम्मति पेश कीजावेगी।

## ( ग ) मन्त्रीसभा

श्री भीष्म जी के कथनानुसार राजा के अधिकारों को परिमित करनेवाली राजसभा निम्न प्रकार होनी चाहिये :—

'चार ब्राह्मण--जो वेदज्ञ, प्रगल्भ, स्नातक और पवित्राचारी हों।

आठ क्षत्रिय—जो शस्त्रविद्या में निपुण और बलवान् हों।

इक्कीस वैश्य–जो धनी हों।

तीन शूद्र—जो नित्य कर्मोंके करने वाले, पवित्र और विनीत हों। यह छत्तीस तुम्हारे मन्त्री होने चाहियें किंतु चार ब्राह्मणों, तीन शूद्रों और एक सूत का अष्ट प्रधान बनाकर राजा सदा विचार किया करे, इस के विचारों को राष्ट्र के बीच में प्रचार करके राष्ट्रीय पुरुषों को मालूम कराना होगा'।

इस प्रकार राजा की अयोग्यता को पूर्ण करने के लिये यहाँ भीष्म पितामह ने ३६ महाशयों की एक गुप्तसभा ( Privy council ) रक्खी है और उसमें से आठ महाशयों की एक मंत्रीसभा ( Cabinet ) बना दी है–यही लोग सब प्रकार के नियम बनाने तथा प्रबंध करने के अधिकारी हैं।

## लोकसभा का अभाव

मैं समझता हूं कि यदि हमारे पूर्वज प्रजातन्त्र राज्य की महिमा को समझते, तो यहां अवश्यमेव

भीष्मपितामह युधिष्ठिर को उपदेश देते कि 'एक लोकसभा होनी चाहिये जिस में प्रजा की ओर से निर्वाचित इतने २ महाशय आने चाहियें कि उन्हीं की ओर से मन्त्री निर्वाचित होने चाहियें, कि यही लोकसभा राजनियम बनाया करे, कि एक उच्चतर लोकसभा उन नियमों को स्वीकार कर लेवे तो राजा की स्वीकृति व अस्वीकृति होनी चाहिये इत्यादि' किन्तु इस प्रकार के प्रजातन्त्रराज्य का नाम मात्र भी नहीं मिलता। हां एक सत्ता के राज के दोषों को कम करने का यत्न किया है। उक्त सभा में इस तत्व पर भी ध्यान देना चाहिये कि उसमें वैश्यों की अधिकता है। ३५ में २१ वैश्य हैं। ब्राह्मणों का अल्प पक्ष है--भीष्म पितामह इस सत्य को ग्रहण किये हुए थे कि कृषि, व्यापार व्यवसाय की रक्षा तथा उन्नति राज्य के द्वारा हो सकती है किंतु वैश्यों की अधिकता से ही उनके हितों की रक्षा होसकती है,अन्यथा नहीं। आज कल की राजसभाओं में सब प्रकार के दलों और वर्णों का प्रकाश होता है बल्कि देश में उनका जो बल होता है, उन के अनुपात से ही उन के प्रतिनिधि राजसभा में आते हैं। एवम् भीष्मजी ने शूद्रों का

प्रतिनिधि होना भी प्रमाणित ठहराया है। बस, ऐसी सभा का विस्तार ही चाहिये था तो वह आज कल की लोकसभाओं के समान हो सकती थी।

( घ ) मन्त्रियों को कौन नियत करे ?

हमारे शास्त्रों में प्रजातंत्र राज्य का एक आवश्यक बन्धन नहीं पाया जाता है। वह यह कि मंत्री वर्ग का नियत करना राजा के अधिकार में रक्खा है न कि प्रजा वा बहुपक्ष वाले दल के अधिकार में। बस इसी में सब ख़राबियां हैं, यदि राजा के हाथ में मंत्रियों का नियत करना तथा हटाना हो तो वह मंत्री राजा के हितों का अधिक ख़्याल करेंगे, अपेक्षा इसके कि वह प्रजा के हितों का ख्याल करें। किन्तु जब प्रजा से नियत मंत्री वर्ग हों और राजा हटा भी न सके, जैसा कि आज कल के सभ्य देशों में है तो वे राजा की परवाह न करते हुए प्रजा के हितों के वर्धन में लगे रहते हैं और राजा के स्वेच्छाचार को खूब रोकते हैं। इङ्गलैन्ड का इतिहास इन बातों का साक्षी है।

जहां प्रजा की इच्छाओं के प्रकट करने वाली लोक-सभा ही नहीं तो मन्त्रियों के कर्मों को प्रजा क्या रोक

सकती है ? मुसलमानों के राज्य में हिन्दु प्रजा के पास मन्त्रियों की शक्ति वा राजाओं के स्वेच्छाचार को रोकने के क्या साधन थे ? सर्वथा कोई नहीं, एक ही बड़ा साधन था जिसका नाम विद्रोह है, किंतु कितनी वार प्रजा ने विद्रोह किये ? ७०० वर्षों के दीर्घ काल में उनकी संख्या अतीव अल्प है । विद्रोह सर्वदा कम होते हैं, क्योंकि लोग युद्ध की हानियों से घवराते हैं। राजा के अत्याचार ऐसे बुरे नहीं होते जैसे संग्राम के कष्ट जिस में जीवन तक नष्ट हो जाते हैं, अतः हमें यह बात असंदिग्ध प्रतीत होती है कि एकसत्तात्मक राज्य में प्रजा के अधिकारों की कोई रक्षा नहीं होती और ख़ासतौर पर जब कोई लोकसभा न हो या राज्य कर्मचारियों के नियत करने तथा हटाने का अधिकार प्रजा को प्राप्त न हो। शुक्रनीति में इस नियम को अवश्यमेव समझा गया है । उसके निम्न लिखित शब्द अवश्य स्मरणीय हैं :—

मंत्री आदिकों के विचारों के विना राजा के राज्य करने से अवश्य राज्य नष्ट होता है और इस प्रकार राजा को बुरे मार्ग से नहीं हटाया जा सक्ता, अतः मंत्री लोग सुमंत्री होने चाहियें ।

जिन मंत्रियों से राजा नहीं डरता उन से राज्य की क्या उन्नति हो सक्ती है ?

२. ८१-८२

यह शब्द सारगर्भित हैं। क्योंकि जब तक मंत्रिवर्ग राजाओं के स्वेच्छाचार को रोकने वाले, प्रजा के हितचिन्तक न हों तब तक सुशासन नहीं हो सक्ता। वह स्वतंत्र होने चाहिएं, राजा उनको न हटा सके और न ही नियत कर सके। बल्कि प्रजा के प्रतिनिधि ही मंत्रीवर्ग नियत करें और हटा सकें।

सम्भव हो सक्ता है कि इस क़िस्म का भी कोई नियम हो, जो नीतिशास्त्रों के गुम होने और जो शास्त्र इस समय मिलते हैं उन में परिवर्तन आने से हटा दिये गये हों क्योंकि यह बड़े बल-युक्त शब्द हैं कि:—

जिन मंत्रियों से राजा नहीं डरता वे मन्त्री केवल भूषण, वस्त्रादिकों से सुसज्जित स्त्रियों की न्याईं हैं-

२. ८२. फिर एक स्थान पर मन्त्रियों को यह आज्ञा है:—

हितं राज्ञश्चाहितं यल्लोकानां तन्न कारयेत्।

जिन बातों में राजा का हित हो किन्तु प्रजा का अनहित हो, उन बातों को न करना चाहिये।

इस प्रकार के स्वतंत्र मन्त्रियों से अवश्यमेव भारत के राजाओं का अत्याचार रुका रहता होगा और चूंकि उन में धर्म के प्रेम की अधिकता थी-इस कारण भी प्रजा पर ज़ुल्म नहीं होता होगा।

(ङ) प्राचीन तथा आधुनिक मंत्री सभाएं-प्राचीन-काल में प्रत्येक मन्त्री के अधिकार में एक प्रबन्ध विभाग था जैसा कि आज कल है। शुक्रनीति में कहे हुए दश पदों के नाम यह हैं:—

१. पुरोधा— Minister of Relegion.
२ प्रतिनिधि— Lord Chancellor
३. प्रधान— Prime Minister.
४. सचिव— War Minister.
५. मन्त्री— Secretary for Foreign Affairs
६. पण्डित— Minister of Education.
७. प्राड्विवाक—Law Minister.
८. अमात्य— Minister of Agriculture
९. सुमेन्त्र— Finance Minister.
१० दूत— Ambassador in Chief.

इन मंत्रियों के जो गुण बताये गये हैं वे वस्तुतः पढ़ने योग्य हैं किन्तु यहां स्थानाभाव से नहीं दिये जा सकते। आगे देखिये कि प्रत्येक मद में तीन महापुरुष नियत करने को कहा है। उन तीनों से अधिकतम बुद्धिमान् उस विभाग का अधिपति होना चाहिये। आज कल भी ऐसा होता है:— एक सचिव (Minister) होता है, दूसरा मन्त्री (Secretary) तीसरा उपमन्त्री (Assistant Secretary)। उन्हें ५, ७, वा १० वर्षों तक पदों पर रखा जावे, उनकी योग्यताओं को भली प्रकार जांचना चाहिये। और किसी पुरुष को जीवनपर्यन्त पद नहीं देने चाहियें। आपको ज्ञात है कि भारत में प्रबन्ध कर्तृ सभा के सभ्य तथा लाट और महालाट ५ वर्षों तक पदों पर रहते हैं, भारतसचिव की सभा के सभ्य १० वर्षों तक और पार्लियामेंट के सभ्य ७ वर्षों तक पदाधिकारी होते हैं। इस प्रकार पदों के विषय में शुक्रनीति के अत्युत्तम विचार हैं। साथ ही उक्त शब्दों का मुसलमानी बादशाहों के राज्यवृत्तान्तों से मुकाबला करिये। उस समय जीवनपर्यन्त पद दिये जाते थे और छोटे २ पद भी वंशपरम्परा-

से चलते थे। ऐसी दशा में सारा आवा ही ऊत गया था। जड़ से शाखाओं तक सारे वृक्ष को घुण लगे हुए थे।

(च) राज्य से च्युत करना।

अब हम उस बन्धन की साक्षी देते हैं जिसे सभ्य संसार सब से उच्च समझता है। वह स्वेच्छाचारी, अहंकारी, अत्याचारी, राजाओं को सिंहासन से उतार कर उनके स्थान पर प्रजा की ओर से निर्वाचित राजा को राज्य देना है। इंगलैण्ड में जहां आधुनिक काल में सब से पहिले प्रजातन्त्र राज्य का उद्भव हुआ-इसी बंधन को वारंवार बर्ता गया। शुक्राचार्य के शब्दों में वह बन्धन यह है—

गुणनीतिबलद्वेषी कुलभूतोऽप्यधार्मिकः।
नृपो यदि भवेत् तन्तु त्यजेद्राष्ट्रविनाशकम्॥
तत्पदे तस्य कुलजं गुणयुक्तं पुरोहितः।
प्रकृत्यनुमतं कृत्वा स्थापयेद्राज्यगुप्तये॥

जो राजा गुणों, नीति, राज्यप्रबन्धक नियमों और बल का शत्रु हो गया हो, जो अच्छे कुल में

उत्पन्न हो कर भी अधार्मिक हो गया हो उस विनाशक को राज्य से हटा देना चाहिये। उसके स्थान पर राष्ट्र की रक्षा के लिये राजपुरोहित (Minister of Religion, जैसे इंगलैंड में कैन्टरबरी का आर्च विशाप है) राजकर्मचारियों की मति लेकर उसके कुल में उत्पन्न हुए किन्तु गुणयुक्त सम्बन्धी को स्थापन करें।

मनुस्मृति में भी यही आदेश है:—

मोहाद्राजा स्वराष्ट्रं यः कर्षयत्यनवेक्षया।
सोऽचिराद्भ्रश्यते राज्याज्जीविताच्च सबान्धवः॥

जो राजा मूर्खता तथा मोहवश होकर अपनी प्रजा को सताता है वह शीघ्र राज्य से च्युत किया जाता है और बन्धुओं सहित मृत्युलोक को प्राप्त होता है। मनु ने वीना, नहुष, सुदास, सुमुख, तथा निमि नामक राजाओं के उदाहरण भी दिये हैं किंतु इन राजाओं ने ब्राह्मणों की इच्छानुसार वर्ताव न किया, इस पर उन्हें शाप देकर मनुष्यरूप से बदल दियागया। अर्थात् प्रजा की ओर से इन राजाओं को सिंहासन से उतारा गया-किसी लोकसभा में उन

के अपराधों का निर्णय हुआ- यह बातें नहीं दीख पड़तीं किन्तु शुक्राचार्य से इन बातों का परिणाम निकल सकता है। कुछ ही क्यों न हो मनु के यह वाक्य कि अत्याचारी राजा केवल राष्ट्र से निराश नहीं होता बल्कि कुलसहित जीवन से भी निराश हो बैठता है--आंगलों के इतिहास से सच्चे साबित होते हैं।

आँगल इतिहासवेत्ता जानते हैं कि राजा के अत्याचारों से पीड़ित प्रजा ने रिचर्ड, एडवर्ड-चार्लस Richard, Edward II, Charles I के सिर काट लिये और John जान, जेम्स II के विरुद्ध ऐसे युद्ध किये जिन से उन्हें स्वतंत्रता का प्रथम प्रमाणपत्र तथा संसारप्रसिद्ध अधिकारपत्र (Bill of Rights)१६८८ में मिला। भारत में किसी राजा को प्रजा की ओर से सिंहासन से उतारने का वर्णन नहीं मिलता--इसलिये कुछ कहा नहीं जा सकता कि इस आज्ञा का पालन कहां तक होता था। किन्तु स्मरण रहे कि राजा की शक्ति का सब से बलिष्ट बाधक यही कारण है क्योंकि जो राजा गण बद दिमाग़, अहङ्कार, मोह और गर्व की मूर्ति

हों यदि उनको सिंहासनों से न उतारा जा सके और उन के स्थान पर योग्य पुरुषों को न बिठाया जा सके तो वे असंख्य अत्याचारों से प्रजाओं को पीड़ित करते रहेंगे--इस भूमि को अपने अत्याचारों से नरकधाम बना देंगे, प्रजा को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति से सहस्रों कोस दूर रक्खेंगे।

एक पुरुष के लिये राज्यप्रबन्ध करना असम्भव है।

हमारे प्राचीन ऋषिवर्ग अवश्यमेव एक सत्ता के राज्य की हानियों को समझते थे और इस लिये उन्होंने उस में प्रबल बाधायें डालने के नियम बनाये थे। शुक्रनीति में लिखा है 'छोटे से छोटा कार्य्य भी अकेले पुरुष के लिये दुष्कर है' बड़े भारी राज्य का तो क्या ही कहना है? सर्व विद्याओं में कुशल और पण्डित राजा भी मंत्रियों के बिना अकेला कभी चिन्तन न करे।

राजा सदा सभ्यों, कर्मचारियों, प्रधानपुरुषों और सभासदों की सम्मति से कार्य्य करे।

स्वतंत्रता को प्राप्त हुआ राजा बड़े २ अनर्थ लाता है। भिन्न २ पुरुषों में भिन्न २ बुद्धिमत्ता और व्याव-

हारिक शक्ति पाई जाती है, अतः वह सब की सब एक ही पुरुष में नहीं पाई जा सकतीं।

इस लिये राजा को आवश्यक है कि राज्य-वृद्धि के लिये अपने सहायक रक्खे जो कि कुलीन, गुणी, सुशील, शूर, भक्त, हितोपदेशक, सहिष्णु, धर्मरत, बुरे मार्ग पर चलने वाले राजा को भी बचाने वाले, शुद्ध चरित्र वाले, द्वेषरहित, काम, क्रोध, लोभ, मोह से रहित तथा आलस्यरहित हों। मनुस्मृति में भी ऐसा ही आदेश है।

## मन्त्री सभा

"सब मंत्रियों की अलग २ राय और मिली हुई राय को जानकर अपने हित की बात करे"। (Do what is best for you)। आजकल भारत की प्रबंध-कर्तृ सभा (Executive Council) में भी मन्त्रियों की अलग २ और मिली हुई सम्मतियों को लेकर महा-लाट काम करते हैं। इस प्रकार एक सत्ता के स्वे-च्छाचार को रोकने की ओर पग उठाया प्रतीत होता है। अतः मंत्रीसभा तो थी, किन्तु वह केवल (advisory, consultative) विचार करने के लिये

थी--राजा ही उस निश्चय का उत्तरदाता था। भारत में तो अब भी ऐसा ही है किंतु इंगलैंड में मन्त्री उत्तरदाता हैं और राजा किसी काम के लिये उत्तरदाता नहीं- बुरी बातों के करने में भी राजा का कोई अपराध नहीं होता, उस के मन्त्रियों का दोष है कि उन्होंने राजा को सुमति नहीं दी होगी।

## ( छ ) राजा दण्डनीय है

अति प्राचीनकाल में राजाओं को तिलक देने की जो रीति थी, उस के पठन से ज्ञात होता है कि राजाओं की शक्ति को रोकने के साधन थे, और बड़े बलवान् साधन थे, देखिये--

शतपथ तथा ऐतरेय ब्राह्मणों में राजा के महाभिषेक की रसम समान है और वह बड़ी विचित्र है। जहां उन से स्वेच्छाचारी राज्य को रोकने के भाव प्रकाशित होते हैं, वहां दृढ़तापूर्वक यह विश्वास भी होता है कि इस रसम में भी संसार ने अब तक कोई विशेष उन्नति नहीं की। प्रत्युत उसी रसम को स्वभावतः परम्परा से पूर्ण करते आते हैं। महाराजाधिराज बनने की इच्छा वाला राजा चिरजीवन,

स्वतंत्रता और प्रजा पर स्वत्व जमाने की प्रार्थना के मन्त्र पढ़ कर सिंहासन पर बैठता था.

इस प्रकार बैठ चुकने पर पुरोहित उसे राजा उद्घोषित करते थे और कुछ ऐसे शब्द कहते थे कि एक क्षत्रिय उत्पन्न हुआ है जो सम्पूर्ण जगत् का मालिक है, जो शत्रुओं का घातक है, जो रिपुओं के दुर्गों को भंग करने वाला है, जो असुरों का घातक है, जो ब्रह्म और धर्म का रक्षक है। इसी घोषणा से विधि पूर्ण नहीं होती थी--राजा की सब प्रकार की उपरोक्त विभूतियां उस से छीन ली जासक्ती थीं यदि वह प्रजा वा ब्राह्मणों को हानि पहुंचावे। इस कारण राजा को विशेष शब्दों में शपथ लेनी पड़ती थी कि वह कभी हानि नहीं पहुंचावेगा, यदि पहुंचावे तो उसे राज्य से च्युत कर दिया जावेगा। फिर यह शपथ भी पर्य्याप्त न समझकर उस की पीठ पर दण्ड मारा जाता था कि यदि वह अपने शासन में अपराध करेगा तो उसे भी दण्ड दिया जा सकेगा—वह आधुनिक यूरूपी महाराजाधिराजों के समान अदण्डनीय न था, (परञ्च अमेरिकन प्रधान की न्याई दण्डनीय था) जिन का यह सिद्धांत है कि King can do no wrong-

राजा कोई अपराध नहीं कर सकता। मानव शास्त्र में एक स्थान पर यह भी मिलता है "न राज्ञामघ-दोषोऽस्ति" ( The king is not tainted by sin ) राजा को पाप कलङ्कित नहीं कर सकता।

परन्तु नियम कुछ नहीं कर सकता, जब तक कि प्रजा में उत्साह न हो। परिमित शक्ति का राजा स्वेच्छाचारी होसक्ता है जब कि प्रजा उसके कामों पर ध्यान न दे और नियमों के उल्लंघन करने पर उस से क्रोध प्रकट न करे, अतः उपरोक्त शुद्ध नियमों के होते हुए भी हम कुछ नहीं कह सक्ते कि प्रजा पर वास्तविक राज्य कैसे होता था ?

## मनु के अनुसार भी राजा दण्डनीय है।

मनु का निम्न श्लोक स्मरणीय है क्योंकि इस से स्पष्ट पता लगता है कि राजा को धार्मिक बनाने का कितना वृहत् यत्न ऋषियों की ओर से किया गया था।

> कार्षापणं भवेद्दण्ड्यः यत्रान्यः प्राकृतो जनः ।
> अष्टापाद्यन्तु शूद्रस्य स्तेये भवति किल्बिषम् ॥

जिस अपराध में साधारण मनुष्य पर एक पैसा

दण्ड हो, उसी अपराध में राजा को सहस्र पैसा दण्ड होवे। अर्थात् साधारण मनुष्य से राजा को सहस्र गुणा दण्ड होना चाहिये। भगवान् दयानन्द ने इस श्लोक पर टीका लिखी है "यदि प्रजापुरुषों से राजपुरुषों को अधिक दण्ड न होवे तो राजपुरुष प्रजापुरुषों का नाश कर देवें। जैसे सिंह अधिक और बकरी थोड़े दण्ड से वंश में आ जाती है इस लिये राजा से लेकर छोटे से छोटे भृत्य पर्य्यन्त राजपुरुषों को अपराध में प्रजा पुरुषों से अधिक दण्ड होना चाहिये"।

फिर मनु ७.२८ में कहा है कि दण्ड बड़ा तेजोमय है उसको अनपढ़ और पापी धारण नहीं कर सकता, धर्म से विचलते हुए राजा का भी बन्धु सहित यह दण्ड नाश कर देता है।

इन वाक्यों से पता लगता है कोई लोकसभा या ब्राह्मणसभा होती थी जो राजा को स्ववश में रखती थी-अपराध करने पर उसे दण्ड दे सकती थी। राजा कुछ न कुछ बल्कि बहुत कुछ बाधित अधिकार का होता होगा। किंतु यह श्लोक मनु के कहे बहुत से वाक्यों के सर्वथा विरुद्ध है और जो राजा के कर्त्तव्य तथा उस

की दिनचर्य्या मनु ने बतलाई है, उससे भी यही पता लगता है कि यह स्वेच्छाचारी एक सत्तात्मक राजाओं का वर्णन है, और उक्त दो श्लोक इनके विरोधी हैं।

## (ज) ब्राह्मणों की प्रधानता

सच्चे ब्राह्मणों का राजाओं से उच्च होना भी एक बहु बन्धनकारी साधन था। दुराचारी राजा के राज्य में साधु, पण्डित, संन्यासी, ऋषिजन वास करना छोड़ देते थे, या विद्वान् जिन्हें देव कहा जाता था जिस राजा को शाप दे देवें वह अपने तईं हत-भाग्य समझता था। अतः अवश्यमेव राजाओं का स्वेच्छाचार रुका रहता होगा।

(क) अति प्राचीनकाल में जब दशरथ महाराज की सभा में विश्वामित्र जाते हैं तो राजा सिंहासन से उठकर उन्हें स्वयम् अन्दर ले जाते हैं, उन्हें सिंहासन पर बिठाते और स्वयम् नीचे बैठकर उनसे कुशल पूछते हैं।

(ख) महाभारत में सैंकड़ों ऋषियों के तर्पण का

वर्णन आता है जहां राजा गण ब्राह्मणों के सामने अतीव तुच्छ प्रतीत होते हैं।

(ग) उपनिषदों में कई स्थानों पर यही दृश्य दीख पड़ता है। यहां उदाहरणार्थ एक घटना पेश की जाती है।

अश्वपति राजा के राष्ट्र में औपमन्यव, पौलुषि, इन्द्रद्युम्न, बुडिल, आश्वतरश्वि नामी ऋषि जाते हैं। राजा भयभीत हो जाता है कि अपनी तपस्याओं को छोड़ कर यह साधुजन मेरे पास क्यों आये हैं और मेरा भोजन भी क्यों स्वीकार नहीं करते। अवश्यमेव मैंने कोई अपराध किया होगा, अपने तईं निर-पराध ठहराने को राजा अश्वपति अपने राष्ट्र की अवस्था का यह चित्र खींचता है।

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः। नानाहिताग्निर्नाविद्वान, न स्वैरिणी '–मेरे राष्ट्र में कोई चोर, शराबी, अनपढ़, व्यभिचारिणी स्त्री, अग्निहोत्र न करने वाला नहीं पाया जाता–अतः आप प्रसन्न हो-कर भोजन करें।

अतः सब ब्राह्मणों के भय से राजगण अवश्यमेव

सदाचारी तथा राज्य के हितवर्धन की चिन्ता करते रहते होंगे।

(ख) कविवर कालिदास ने अपने रघुवंश में वशिष्ठ ऋषि की कुटिया में दिलीप के जाने का जो दृश्य खींचा है उसे पढ़कर कौन कह सकता है कि आज कल के शानो शौक़त पसन्द, अहंकारी, अभिमान की मूर्ति राजा महाराजों की न्याईं भारतवर्ष के प्राचीन राजा होते थे ?

(ङ) श्री राम के आत्मत्यागी भाई—भारत माता के सुपुत्र भरत जब भारद्वाज ऋषि की कुटिया में सेना समेत जाते हैं तब वह अपनी तब वह अपनी सारी सेना को आज्ञा देते हैं कि वह आश्रम में पदार्पण न करें क्योंकि इससे ऋषि के आश्रम में विघ्न पड़ेगा।

## राजा स्नातक से कम पदवी रखता है

(च) एवम् विद्वानों और स्नातकों के मुक़ाबिले में राजाओं की स्थिति देखिये।

मनु भगवान् ( २. ३९ ) के यह वाक्य हैं, जहां

भिन्न २ कई आदमी इकट्ठे हों वहां स्नातक और राजा मान्य के योग्य हैं और जहां स्नातक और राजा हों वहां राजा को स्नातक का मान्य करना चाहिए यही विचार आपस्तम्ब II,5-7, गौतम VI 24, 25, वसिष्ठ XIII, 58-60, बौधायन II. 6, 30 याज्ञवल्क्य I, 117 और विष्णु 43, 51 में पाये जाते हैं। जब राजों से स्नातक उच्च पदवी रखते हों तो स्पष्ट है कि प्राचीन आर्य्य, राजा को देवता समझकर उसकी पूजा नहीं करते थे। हमारे शास्त्रों में राजाओं की पूजा और देवता पन के श्लोक कुछ मंद बुद्धिवाले पण्डिताभास लेखकोंने मिला दिये होंगे।

## राजा कौन है ?

(छ) इस विषय में शुक्रनीति की एक अन्य अत्युत्तम साक्षी लीजिये—

'कर्मचारी वर्ग कभी राजलेख के बिना कार्य न करें, भूल जाना मनुष्य का स्वाभाविक गुण है अतः लिखित पत्र अच्छा निर्णायक है, राजा से अंकित पत्र असली राजा है, राजा राजा नहीं'। आज कल का

अति प्रशंसनीय नियम कि पद का मान है न कि उस पद के धारण करनेवाले पुरुष का इन वाक्यों में मिलता है। राजा तो राजा नहीं बल्कि राज्यपद की मुद्रा राजा है। राजा की ज़बानी बातों की कुछ परवाह नहीं की जासक्ती—उसकी लिखित आज्ञा का ही प्रजा को सन्मान करना चाहिये। राजा अन्याय न करसके, इस विषय में निम्न बन्धन दिखाई देते हैं।

## प्राचीन भारत में वकीलों की सत्ता

(ज) इंग्लैण्ड में जो Heabus Corpus हीबस कार्पस नामी पत्र पर चिरकाल तक झगड़ा रहा, जो यह था कि किसी नर नारी को विना राजपत्र दिखाये कि उसका क्या २ अपराध है, कोई पुलिसमैन क़ैद न करसके। यदि अपराधपत्र न दिखाया जावे और उस दोष से रिक्त होने का अवसर न दिया जावे तो अपरिमित अन्याय राजाओं की ओर से हो सकता है जैसा कि मुसलमानी समय में होता रहा या आज कल कुछ देशी रजवाड़ों में होता है। महाराज किसी कर्मचारी से रुष्ट हुए तो उसकी जागीर छीन कर, पदच्युत करके क़ैद में डालदिया या देशनिकाला

दे दिया । अपराध क्या है और अपराध वस्तुतः किया भी गया है या न, इस बात की सुनवाई नहीं। यह स्वेच्छाचार है, राज नहीं, फिर बड़ी विचित्र बात है कि आज कल के सभ्य काल में हमारे कई रज-वाड़ों में वकीलों द्वारा अपराधियों को अपनी रक्षा करने का अवसर न दिया जावे । निस्सन्देह आज कल वकीलों के कारण मुक़द्दमाबाज़ी बढ़ रही है और दोषी लोग छूट भी जाते हैं और निरपराधियों को दण्ड होजाता है किन्तु राज्य की ओर से वकील नियत हों और 'जो पुरुष क़ानून नहीं जानते, जिन्हें अन्य बहुत काम हैं, जो शुभाषक नहीं, जो मूर्ख हैं, जो वृद्ध बालक रोगी हैं और जो स्त्रियां हैं, ऐसों के लिये वकीलों का होना आवश्यक है'। साथ ही वकीलों के गुण शुक्रा-चार्य के अनुसार ऐसे होने चाहियें:—

जो मनुष्य व्यवहार (law) और धर्म को जानता हो केवल उसे ही वकील बनाना चाहिये, और यदि वह रिश्वत लेता हो तो राजा को चाहिये कि उसे दण्ड देवे । राजा को सदा अपनी ही इच्छा से वकील नहीं निश्चित

करना चाहिए। परन्तु यदि वह लोभवश हो—झूठा पक्ष करता हो तो उसे दण्ड देना चाहिए।

राजा को राग, लोभ, क्रोध तथा केवल अपने ही परिज्ञान से दोषी के न्याय का फैसला नहीं करना चाहिए।

जिस के विरुद्ध अभियोग हो उसे राजा अपनी मुद्रा (सम्मन) या पुरुष भेज कर बुलवावे।

इन विविध नियमों से अब स्पष्ट हो गया होगा कि जहां तक एक सत्तात्मक राज्य का प्रश्न है, वहां तक हमारे ऋषियों ने उसके स्वेच्छाचार को रोकने और राजा को परिमित शक्तियों के रखने वाला बनाया है।

अब हम एक सत्ता के राज्य की त्रुटियों की ओर ध्यान देते हैं। उन्हें ध्यान से सुनना चाहिये, ताकि आपको ज्ञात हो कि उत्तम से उत्तम एक सत्ता का राज्य भी यद्यपि वह बन्ध्या के पुत्र की न्याई इस संसार में अविद्यमान होगा—प्रजा का हितवर्धक नहीं हो सकता-कि यह आदर्श राज प्रणाली नहीं।

# अध्याय ५

## एक सत्तात्मक राज की हानियां।

महती देवता ह्येषा नररूपेण तिष्ठति ॥ मनु० ७. ८

जिस प्रकार के कई तुच्छ विचार राजा की प्रतिष्ठा के बारे में मनुस्मृति और शान्तिपर्व आदि नीति-शास्त्रों में पाये जाते हैं—निश्चय जानिये कि सभ्य संसार उन्हें सुन कर छी छी की पुकार से आकाश को गुंजा देगा, और ऐसी गन्दगी को कभी अपने सामने नहीं आने देगा।

वे ऐसे असभ्य विचार हैं कि वर्त्तमान काल के सभ्य लोग उनसे सहस्त्रों कोष दूर भागना चाहेंगे।

मेरा अपना विश्वास है ऐसे नीच श्रेणी के विचार मनु भगवान् के कभी नहीं हो सकते, नक्क तुच्छ बुद्धि वाले पण्डिताभासों ने अन्धकारमय समय में मिला दिये होंगे। खैर! यह मिलावट की बात जैसे भी हो—विचार यह है:—

१. मनुष्य जानकर बालक राजा भी अपमान करने

योग्य नहीं है, क्योंकि यह एक बड़ा देवता मनुष्य रूप से स्थित है । ७. ८

वंशपरम्परा के राज में ऐसे वाक्यों का होना आवश्यक है क्योंकि राजवंश में ही राज रहना हो तो मृतराज का पुत्र नाबालग़ भी हो सकता है। ऐसी दशा में सम्भव हो सकता था कि प्रजावर्ग उसकी परवाह न करते हुए किसी योग्य पुरुष को राजा बना देते या उसकी आज्ञाएं न मानते, अतः मनुस्मृति में यह लिख दिया गया कि वह साधारण मनुष्य नहीं वह एक महान् देवता है--अतः बालक न जान कर बल्कि उसे देवता मान कर उसकी आज्ञाओं का पालन करो। परन्तु कौन नहीं जानता कि बालक राजा का समय स्वार्थी मन्त्रियों के अत्याचार का समय होता है- विदेशी राजा राष्ट्र पर आक्रमण करते हैं--एवम् प्रजा के अनहित की सैकड़ों बातें होती हैं। "न राज्ञामघदोषोऽस्ति" मनु के यह वाक्य भी साधारण नहीं हैं-योरुप में Divine Rights of Kings राजाओं के दैवी अधिकार व परमेश्वर के प्रतिनिधि होने से राजाओं के निर्भयता का भाव सैंकड़ों वर्षों से हटा दिया गया है और तभी वह अब स्वतन्त्रताप्रिय

जातियों का महाद्वीप है किन्तु मनुस्मृति में इन्हीं दुष्ट बातों पर बल दिया गया है जैसे—

२. अग्नि के ऊपर कोई मनुष्य कुचाल चले तो वह केवल उसी एक मनुष्य को जलाती है परन्तु राजा कुचाल चलने वाले के कुल को भी पशु और धन सहित नष्ट कर देता है। ७. ९

स्पष्ट है कि यहां राजाओं को अपरिमित शक्ति दी गई है जो प्रजा को सर्व प्रकार से दबाती है। इस में उचित समालोचना ( Just criticism ) का भी स्थान नहीं प्रतीत होता और जब अगले श्लोक में यह कह दिया कि जिन २ पुरुषों पर राजा अनुग्रह करे-जो उस के प्रेमपात्र होने से धनी हो रहे हों उन के विरुद्ध शब्द न उठावे और जिसे राजा अपना शत्रु समझ लेवे--उसे प्रजा भी शत्रु समझ लेवे तो प्रजा के स्वातन्त्र्य का द्वार बंद कर दिया गया है।

३--जो अज्ञानवश राजा से द्वेष करता है वह निश्चय से नाश को प्राप्त होता है, क्योंकि उस के शीघ्र नाश के लिये राजा मन लगाता है-७.१२.

४. इस लिये राजा अपने अनुकूलों में जिस धर्म और

प्रतिकूलों में जिस अनिष्ट का निर्णय करे-प्रजो उस धर्म को न तोड़े। ७. १३।

रामायण का भी एक श्लोक स्मरणीय है:—

राजा सत्यश्च धर्मश्च राजा कुलवतां कुलम्।
राजा माता पिता चैव राजा हितकरो नृणाम्॥

"राजा सत्य और धर्म का अवतार है, राजा कुलीनों का भी कुलीन हैं, राजा प्रजावर्ग की माता और पिता है, राजा प्रजा का हित करने वाला होता है"। भारत को ग़ारत करने वाला यही दुर्विचार है कि राजा गण सत्य और धर्म की मूर्ति हैं कि वे प्रजा के माता पिता हैं। हां सर्व प्रकार से प्रजा का हित करने वाले राजा को कोई पिता कह देवे तो बुरा नहीं लगता किंतु तत्त्ववेत्ता मिल साहब का विश्वास है कि स्वेच्छचारी एक सत्तात्मक राज में उत्तम से उत्तम राजा भी प्रजा का उतना हितवर्धक नहीं हो सकता जितना प्रजासत्तात्मक राज में निकृष्ट से निकृष्ट प्रधान कर सकता है-इसलिये राजा को पिता नहीं कहना चाहिये।

(II) दूसरा कारण यह भी है कि सहस्रों राजा

प्रजा को पीड़ा देने वाले अत्याचारी राक्षस होते हैं उन्हें हम धर्म तथा सत्य का अवतार और पिता कैसे मान सकते हैं ?

( III ) मनुस्मृति आदि नीतिशास्त्रों में शत्रुओं को क़ाबू में करने के लिये जिन आठ प्रकार के साधनों का वर्णन किया हुआ है--उन्हें करता हुआ राजा कदापि सत्य तथा धर्म की मूर्ति नहीं होसकता वह कपट, छल, असत्य, अधर्म की मूर्ति होता है। हमारे विचार में उक्त आठ साधनों के विना संसार में राज नहीं चल सकता, इसलिये कई दार्शनिक राज को आवश्यक बुराई (Necessary evil) मानते हैं। साथ ही राजा गण के लिये भी आवश्यक है कि वे गुप्त मंत्रिगण, कपट, छलादि का आश्रय लेकर काम चलावें, जब शास्त्रकार इन बातों के करने की आज्ञा देवें और साथ ही राजाओं को सत्य तथा धर्म के अवतार कहें, तो इस से बढ़कर विरोधनी बातें संसार में नहीं हो सकतीं।

( IV ) सत्य तो यह है राजा प्रजा का ( समूह रूप से न कि प्रजा पुरुषों में से प्रत्येक व्यक्ति का )

सेवक है । प्रजा राजा का मालिक वा स्वामी है, वही उस का पिता है न कि राजा प्रजा का स्वामी व पिता व माता है । हमारे मनुष्यकृत शास्त्रों ने राजा प्रजा की स्थिति उलटा दी है और इसी से ही हमें सहस्रों वर्षों तक पराधीन रहना पड़ा है । और अति प्राचीन काल से भी कई अवसरों के सिवाय प्रजासत्तात्मक राज का कदापि पता नहीं मिलता ।

अब शांतिपर्व के कुछ विचार सुनियेः- ' राजा की आज्ञा पालन इस लिये नहीं करनी चाहिए कि वह एक मनुष्य है परंतु इसलिये कि मनुष्य के रूप में वह एक महादेव है. राजा का क्रोध उस पुरुष के पास कुछ भी नहीं छेड़ता जिस पर राजा क्रुद्ध होजावे । राजा से सम्बन्ध रखने वाली प्रत्येक बात को दूर से ही नमस्कार करना चाहिये. श्रुतियों का कथन है कि राजा का राज-तिलक करते समय राजा के रूप में इंद्र का ही राजतिलक हो रहा होता है. जो पुरुष अपनी समृद्धि का अभिलाषी हो उसे इन्द्र के समान राजा की पूजा करनी चाहिए. राजा का दैवीपन Divinity के सिवाय और क्या कारण ऐसा हो सकता है जिस से इस संसार के सर्व मनुष्य उस की आज्ञा पालन करें. इसलिये जो पुरुष अपने हृदय

की अन्तर्हित गुफा में भी राज का अनहित चिंतन करता है—उसे यहाँ अवश्यमेव दुःख उठाना पड़ता है और वह निश्चयपूर्वक नरक लोक में जाता है ।

Even if the king be unmindful of his duties, the subjects should not be dissatisfied—**यदि राजा स्वकर्तव्य पालन न करे तो भी प्रजा असन्तुष्ट न हो ।**

( शान्तिपर्व )

प्राचीन लोग कहते हैं कि देव और राजा में कोई भेद नहीं। एवम् महाराजा युधिष्ठिर का एक प्रश्न ध्यान से सुनने योग्य है ( शांति. ५९ अध्याय )। हे भरतनन्दन ! मैं देखता हूं कि इस भूमि पर राजा तथा साधारण नर नारियों की बनावट में कोई भेद नहीं—हाथ, पांव, मुख, गर्दन, वीर्य, हड्डी मांस, मज्जा, रक्त, बुद्धि, इन्द्रिय, आत्मा, सुख, इच्छा, विश्वास, प्राण, शरीर, जन्म, मृत्यु और अन्य सहस्र प्रकार से राजा अन्य पुरुषों के समान है। फिर भी वह बुद्धिमान् और शूरवीर पुरुषों के ऊपर राज्य करता है। इस का क्या कारण है कि राष्ट्र में बहुत से शूरवीरों, कुलीनों, बुद्धिमानों, सदाचारियों के होते हुए एक पुरुष प्रजा

पर राज्य करता है ? क्यों सब कोई एक पुरुष के प्रसन्न करने की अभिलाषा करते हैं ? क्यों उस एक पुरुष के प्रसन्न होने पर सब कोई प्रसन्न और उस के व्याकुल होने से सम्पूर्ण पुरुष व्याकुल होते हैं ? हे भरतर्षभ ! इस रीति का कोई प्रबल कारण होना चाहिये क्योंकि यह देखा जाता है कि उस एक पुरुष को देवता के समान सब कोई नमस्कार करते हैं। इस के उत्तर में भीष्मजी विरजस् की कथा सुनाकर राजा हो कर दूसरों पर शासन करने का यह सिद्धान्त ठहराते हैं। "पूर्व जन्म के किये हुए, सुकर्मों के क्षय होने पर कई आत्माएं स्वर्गलोक से गिर कर पृथिवी पर आती हैं, और सत्गुणावलम्बी, बुद्धिमान्, दण्डनीति जानने वाले भूपति होकर जन्म ग्रहण करते हैं। तिस के अनंतर देवताओं से अभिषिक्त होकर उच्च माहात्म्य को प्राप्त होते हैं—बस, इसी कारण अखिल जगत् उस एक ही पुरुष के वशीभूत होता है और उस के शासन को अतिक्रम नहीं करता।" महाराज भीष्म के उक्त कथन पर हमें कुछ वक्तव्य है।

(I) पूर्व जन्म के कर्मों के कारण कोई राजा और

कोई निर्धन के घर पैदा होता है-इस में सन्देह नहीं, (ii) पर सब राजा सत्वगुणी, नीतिनिपुण और बुद्धिमान् होते हैं-यह संसार के अनुभव के विरुद्ध है (iii) कि उन में कोई दैवी अंश है-यह भी सर्वथा इतिहास से प्रमाणित नहीं ठहरता, (IV) फिर राजा के घर में पैदा होने वाले सभी सुखी नहीं होते। मुसलमानों के समय हमें ज्ञात है कि सिंहासन पर बैठने वाले भाइयों ने भाइयों को और पिताओं ने अपने पुत्रों को भी अकथनीय कष्ट दिये। (V) जहाँ २ प्रजातन्त्र राज्य है- पांच छे वर्षों तक प्रधान शासन करते हैं क्या वहां ऐसी आत्माएं नहीं जातीं, केवल भारत जैसे देशों में उनका आगमन होता रहा और रहेगा ? अब सारे संसार में प्रजातन्त्र राज्य होगा क्या उस समय ऐसी आत्माओं के आगमन का चक्र बन्द हो जावेगा ? (VI) हमें यह भी संशय है कि राजाओं को सुख होता है और विशेष तौर पर उन राजाओं को जिन के कर्म शास्त्रों ने वर्णन किये हैं-उन्हें तो यहां ही नरक होगा। अभिप्राय यह है कि:—

यदि सद्गुणावलम्बी, बुद्धिमान् तथा दण्डनीति के

जानने वाले राजा गण हों तो सम्भवतः शासन के कुछ कर्त्तव्यों को वे करलेंगे किन्तु कोई पुरुष सद्गुणों वाला वस्तुतः नहीं कहा जासक्ता जो अन्यों की समानता, स्वतन्त्रता, उत्साह, वीरता, धीरता, राज्यप्रबन्ध की शक्ति का विमर्दन करके सारी आयु तक स्वयं राज्य करता और फिर पुत्र को राज्य सौंप जाता है। आदर्श राजगण वे होंगे जो अपनी प्रजा को प्रजासत्तात्मक राज्य के लिये शीघ्र तय्यार करके अपने आप ही राज्यपद से त्यागपत्र देदेंगे और प्रजा को विराष्ट्र Repubtics के बनाने में सहायता देंगे और स्वयं देश के उत्तम नागरिक के तौर पर जीवन व्यतीत करके दिखावेंगे। अतः भीष्म महाराज के मुखारविन्द में जो शब्द रखे गये हैं वे सर्वांश में ठीक नहीं किन्तु बहुत से देशों के बादशाहों के जीवनों को देख कर हम कह सकते हैं कि वे सर्वथा असत्य हैं।

संसार के इतिहास के अध्ययन, अवलोकन और मनन से हमारा यह भी विश्वास है कि वंशपरम्परागत राजा गण प्रायः आम तौर पर नीचतम पुरुष थे। वे काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहङ्कार, ईर्ष्या, द्वेष, कपट, छल, क्रूरता, निर्दयता और असत्यता की मूर्त्ति

थे। वे आम तौर पर आचारभ्रष्ट, दुरात्मा, और अधम पुरुष हुए हैं। धन, एकाकी शक्ति और चापलूसी की जो बुराइयें होती हैं वे उन में कूट २ कर पाई जाती हैं। सभ्यगण! क्या आप नहीं जानते कि मुसलमानी और हिन्दु राजाओं में बहु विवाह की रीति थी और अब भी है। प्रजापालकों और संसार सुधारकों ने सैंकड़ों स्त्रियों को अपनी धर्मपत्नियां बनाया होता है और उनके अतिरिक्त सैंकड़ों दासियों का बलात्कार से भोग करते हैं। क्या अकबर, शाहजहां, जहांगीर के मीना बाज़ार भूल जावेंगे? क्या जहांगीर ने जिस शठता से नूरजहाँ को प्राप्त किया था वह भुला दिया जावेगा? क्या हम इन राजाओं को देवता मानें? क्या आप को ज्ञात नहीं कि अकबर, जहांगीर, शाहजहां, औरंगज़ेब, फ्रांस का १४वां लूई आदि बादशाह अपने शत्रुओं और कर्मचारियों को मारने के लिये पानों में या अन्य किसी विधि से विष की गोलियाँ दे देते थे? सैंकड़ों निरपराधियों को निर्दयता से मरवाते थे? क्या हम इन्हें देवता मानें? त्राहिमाम्! त्राहिमाम्! नैपोलियन, औरंगज़ेब, बलबन, अलाउद्दीन, शेरशाह नामी

बादशाहों के जीवनों को पढ़िये तो आप को पता लगे, कि वे लोग किस प्रकार शठता, कपट, छल, निर्दयता, और असत्यता की मूर्तियें थीं, तो क्या उन को देवता जानकर पूजा जावे ?

## विराष्ट्र में प्रधानों की स्थिति

क्या इनके सामने सिर झुकाया जावे ? क्या इन के सामने दण्डवत की जावे ? क्या इन को विष्णु इन्द्रादि देवता कहा जावे ? कदापि नहीं, कदापि नहीं ? सच तो यह है इस संसार में पैतृकराज्यपरम्परा की रीति सर्वथा हेय है। सभ्य संसार इस विश्वास को पहले ही पहुंच चुका है, शोक है, कि हमें अपने नीतिशास्त्रों में उन उच्च विचारों की छाया भी नहीं मिलती जो आज कल के सभ्य संसार में वंशागत राजाओं के स्थान पर प्रजा की ओर से चुने हुए प्रधानों के विषय में पाये जाते हैं—यह प्रधान ३, ५, वा ७ वर्षों तक रहते हैं। योग्यतम पुरुष ही प्रधान की पदवी पा सकते हैं, यदि अतीव योग्य पुरुष प्रधान नहीं बनते तो कम से कम वे पुरुष तो होते हैं, उनके आचरण भ्रष्ट नहीं होते। आम तौर पर अमेरिका में साधारण वंशों के लोग प्रधान बनते हैं,

और अपनी प्रधानी का समय व्यतीत होने पर फिर वे साधारण पुरुष होजाते हैं, इस लिये उन्हें देवता समझकर नहीं पूजा जाता, उनके सामने सिर नहीं झुकाया जाता, उन्हें-दण्डवत् नहीं की जाती, वे मनुष्य समझे जाते हैं और वे भी अपने आप को मनुष्य ही समझते हैं अतः वह अन्यों से भाइयों की न्याईं व्यवहार करते हैं। नीच से नीच पुरुष भी अमेरिका की राजधानी वाशिंगटन के श्वेतभवन White Hall में जाकर प्रधान से मिल सकता है, और प्रधान उस से हाथ मिला कर मिलता है, उस से उस के परिवार तथा पेशे की कुशलता पूछता है, उसे अपने पास कुर्सी पर बिठाता है क्या यह समानता के भाव राजाओं के सामने हो सकते हैं? उन के दिमाग चढ़े रहते हैं, वे अपने को भगवान्, देव, इंद्र समझते हैं जैसे कि सिकंदर के विषय में ऐतिहासिक साक्षी है, और जब हमारे धर्म शास्त्र ही उन्हें देवता कहें, तो फिर प्रजा की स्थिति ही क्या है?

---

प्रधान, साधारण पुरुष समझे जाते हैं।

साथ ही देखिये कि अमेरिका के प्रधानों की क्या स्थिति है, चमारों से प्रधान बन सकते हैं, जैसे "अब्राहम लिंकन" बना—उन्हें देवता कौन माने? साधारण यूथपति रूजवेल्ट प्रधान बन जाता है, साधारण प्रोफेसर विलसन प्रधान बना हुआ है, अहो! क्या ही उत्तम दृश्य है कि प्रधान टैफ्ट प्रधानी का समय गुज़ार कर अब अर्थशास्त्र और नीतिशास्त्र का प्रोफेसर बना हुआ है! यह बातें समानता का भाव सिखलाती हैं, सारी प्रजा में उत्साह, वीरता, पवित्रता, सदाचार, सद्गुणों की प्राप्ति की इच्छा पैदा करती हैं ताकि इन के कारण वह भी एक दिन प्रधान बन सकें।

## (ii) राजा गण राष्ट्र को अपनी जायदाद समझते हैं।

घोरतम हानि जिस का वर्णन अब करना आवश्यक है यह है कि राजागण राष्ट्र को अपनी जायदाद समझते हैं और इस लिये जिस पुरुष को

वे राज्य देना चाहें दे जावें-इस कर्म में प्रजा की इच्छा का कोई विचार नहीं किया जाता। योरुप तथा भारत दोनों में यही सिद्धांत मिलता रहा है ( i नैपोलियन ने स्वविषयों में यही सिद्धान्त दिखाया जब कि उसने अपने सम्बन्धियों को हालैण्ड, इटली और स्पेन का राजा बना दिया और उन के बादशाहों को सिंहासन से उतार दिया। बड़े हर्ष की बात है कि हमारे शास्त्र इस बात के पक्ष में नहीं क्योंकि वे बारम्बार कहते हैं कि जिस देश को फतह किया जावे उस देश की प्रजा की सम्मति से नया राजा बना दिया जावे और विजेता अपने सम्बन्धी को राजा न बनावे या आप स्वयं उस पर राज्य न करे। जैसे प्राचीनकाल में श्रीरामने लङ्का के विजय के पश्चात् रावण के भाई विभीषण को राज्य दे दिया। पीछे का इतिहास न होने से कुछ नहीं कह सकते कि इस नियम पर कहां तक अमल किया गया। (ii) नैपोलियन के बन्दी होने पर जब देश बाँटे गये तो जातियों का ख्याल न करते हुए उन्हें एक दूसरे के साथ मिला दिया गया-उन के नये २ राजा नियत कर दिये गये, किन्तु याद रखना चाहिये कि यदि

जाति का स्वाभाविक और आवश्यक अधिकार है तो प्रथम यही है कि वह स्वेच्छा से किसी विदेशी राजा के आधीन हो सकती है। उस के राजा को यह अधिकार नहीं कि वह जनता को किसी विदेशी राजा के हाथ में सौंप जावे। इङ्गलैंड के राजा एडवर्ड कनफ़ैसर ने विलियम विजेता को इंगलैण्ड की प्रजा सौंप दी-उस समय जातीयता का विचार बढ़ा हुआ नहीं था तथापि युद्ध हुए क्योंकि एडवर्ड को कोई अधिकार न था कि वह स्वराज्य स्वयं सौंप जाता। क्या आप स्वप्न में भी यह ख़्याल कर सकते हैं कि यदि महाराज जार्ज पंचम अपनी बस्तियों समेत इङ्गलैंड को फ्रांस के आधीन कर देवें और स्वयम् राज्य त्याग कर बैठ जावें तो इंगलैण्ड, बस्तियों और भारत की प्रजाएं इस बात को कभी मान लेंगी? कदापि नहीं! यदि कोई राजा राज्य का त्याग करना चाहता है तो करदे किंतु प्रजा का यह अधिकार होगा कि उस के पश्चात् यथेष्ट पुरुष को राजा बनावे।

# भारत में राष्ट्र के जायदाद होने की साक्षियां ।

( क ) चूंकि भारत में प्राचीनकाल से वंश-परम्परागत एकसत्ता का राज्य रहा है, इस लिये चिरकाल से ही यह विचार भी यहां रहा है कि राष्ट्र राजा की जायदाद है। हम श्री हरिश्चन्द्र महाराज की प्रतिज्ञा पालन के लिये बहुत प्रशंसा करते हैं। जिस आत्मत्याग का दृष्टांत उस महात्मा ने दिया। जिस प्रकार स्वयं भिखारी बना, अपनी धर्मपत्नी और पुत्र को बेचा और राजपाट छोड़ा-ऐसी मिसाल संसार के सम्पूर्ण इतिहास में कम मिलती है। किन्तु इस घटना से राष्ट्रसम्बन्धी क्या सिद्धान्त निकलता है? उस ने अपना राज्य विश्वामित्र को प्रदान किया—प्रश्न यह है कि उस का क्या अधिकार था? हमारे ख्याल में कोई अधिकार नहीं था। किन्तु ऐसा किया गया।

( ख ) राज्य को जायदाद समझने का दूसरा उदाहरण लीजिये। श्रीराम के वनवास जाने पर दृष्टि डालिये। आप को पता है कि महाराज दशरथ ने अपनी रानी

कैकेयी को दो वर देने का वचन दिया था। दासी मन्थरा से प्रेरित की गई रानीने राजा से यह वर मांगे कि (I) १४ वर्ष का बनवास रामचन्द्र को मिले और (ii) भरत को राजगद्दी दी जावे।

महाराज के लिये यह शब्द हृदयविदारक थे क्योंकि राम सुशील, प्राणों से भी प्यारा, सत्यवादी, निरपराध था, उसे वनवास देना उचित न था किन्तु महाराज के लिये वचन तोड़ना भी उचित न था। इसलिये राजपाट त्याग अपने माता पिताको शोक सागर में डुबा, कोमलाङ्गी, प्राणप्यारी, राजदुलारी, जनकनन्दिनी को चीर वस्त्र पहना, प्रेमी लक्ष्मण को साथ लेकर श्रीराम वन को चलदिये। उनके आत्म-त्याग का यह दृश्य संसार के इतिहास में नहीं मिलता। किन्तु बन्धुवर्ग! हमें नीतिशास्त्र की दृष्टि से इस घटना पर विचार करना चाहिये।

प्रथम प्रश्न यह है कि राज-सभा की ओर से निर्वाचित राजा श्रीराम को राज्यच्युत करने का कैकेयी क्या अधिकार रखती थी? हमारे ख्याल में कोई अधिकार नहीं हो सकता किंतु उस समय की नीति के

अनुकूल अधिकार था। (i) राज्य राजा की जागीर थी इसलिये कैकेयी राजा को कहती है कि 'आप राम को वनवास देकर मेरे पुत्र को राज्य दें'। (ii) लोक-सभा ने तो राम को राजा स्वीकार किया था किंतु उस सभा से कुछ नहीं पूछा जाता (iii) महाराज दशरथ स्पष्ट कह सकते थे कि मेरे अधिकार में किसी को राज्य देना नहीं है, तू हे कैकेयी ! राजसभा के सामने अपना प्रस्ताव रख--यदि वे अपने निश्चय बदलने पर तय्यार हों तो मुझे कोई एतराज़ न होगा, किंतु क्या ऐसा किया गया? नहीं। भला, यदि राजा ने यह उत्तर नहीं दिया था तो जब राजसभा को पता लगा तो वह भी इस दुर्घटना को दूर कर सकती थी। वह यह कह सकती थी कि "श्रीराम हमारा निर्वाचित राजा है, उसे कोई व्यक्ति हमारी सम्मति के विना राज्य से नहीं हटा सकता"। किंतु यह परमावश्यक बात भी नहीं की गयी। दूसरा प्रश्न यह है कि एक कैकेयी ने सारी प्रजा के लिये राजा चुना। क्यों? यह प्रजा का अधिकार होना चाहिये था न कि दुष्टा कैकेयी का। अतः यहां पर यही परिणाम है कि राजा ने कैकेयी को राज्य दान दिया और कैकेयी ने

अपने पुत्र को वह राज्यदान दिया। उस समय न तो राजसभा ने इस के विरुद्ध शब्द उठाया न प्रजा ने शोर किया। हाँ! प्रजा को राम के वनवास जाने पर शोक अवश्य हुआ और उन्होंने दशरथ को बुरा भला कहा और जब राम वन को जाने लगे तो प्रजा मीलों तक उन के पीछे दौड़ती गयी-किंतु यदि कोई आज कल की राजसभा होती या आज कल जैसा प्रजा का अधिकार होता तो कदापि राम वन में न जा सकता और यदि श्रीराम वन में जाते तो कदापि दुष्टा कैकेयी के सुपुत्र आत्मत्यागी श्री-भरत राजा न बन सक्ते किंतु दशरथ की मृत्यु पर राजसभा हुई, उस में वशिष्ट ने इस युक्ति से सब को चुप करा दिया कि भरत को राजा की ओर से यह राज्य दिया गया है (दत्तराज्यं), अतः उसी को राजा बनाना उचित है।

इस युक्ति के साथ मिलती हुई एक घटना आप सज्जनों को याद दिलाता हूं वह यह है कि समय २ पर भिन्न देशों के राजाओं ने अपने उत्तराधिकारी आप नियत किये हैं। प्रजा ने जहां लोकसभाएं भी थीं राजा की इच्छा को अपने ऊपर शिरोधारी समझा।

यथा इंग्लैण्ड में एडवर्ड कान्फ़ैसर, हैनरी अष्टम, एडवर्ड छटे और ऐलिज़ैबेथ ने अपने उत्तराधिकारी नियत किये वा प्राचीन इतिहासों में सीज़र महान् और सिकन्दर महान् ने अपने उत्तराधिकारियों को नियत किया-ऐसा करना बता रहा है कि राष्ट्र राजा की जागीर है उस में प्रजा की इच्छा नहीं ज्ञात करनी कि वह किस से शासित होना चाहती है और किस से नहीं।

( ग ) आगे चलिये नल और दमयन्ती की कथा से कोई सज्जन अनभिज्ञ न होगा । क्या आप को ज्ञात नहीं कि नल † ने जुए में राज पाट हार दिया-मैं पूछता हूं कि क्या आज कल का सभ्य संसार इस कुकर्म का सहन कर सकता है? क्या आज कल प्रजा पासों में लगाई जा सक्ती है? राजा-प्रजा का प्रतिनिधि है न कि प्रजा राजा की जायदाद है ताकि जिस प्रकार राजा चाहे उस के धन, और शरीरों, सुखों का भोग करे!

( घ ) फिर देखिये । धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने अपने राज्य, धर्मपत्नी और भाइयों को जूए में हार दिया।

---

† लेखकका 'भारतवर्षका संक्षिप्त इतिहास' भाग १- २००-२०२

अपने भाइयों और धर्म पत्नी को हारने का भी अधिकार नहीं होना चाहिये था किन्तु राज्य को पासे से उगाने का अधिकार अत्यन्त घृणित और हेय है। (ङ) इन्हीं महाराजों तक ही राज्यदान देने की प्रथा समाप्त नहीं होती। २३२ ईस्वी में संसार प्रसिद्ध अशोक की मृत्यु पर यही दृश्य दीख पड़ता है। उस के महामन्त्री राधागुप्त ने सब को एकत्र करके यह सूचना सुनाई कि 'संघ को सारी पृथिवी महाराज दान कर गये हैं'। निदान ४ कोटि रुपया संघ को देकर वह राज्य छुड़ाया गया *। इस प्रकार प्राचीन भारत के राजा राष्ट्र को अपनी जायदाद समझते थे और जैसे जायदाद को यथेच्छया दान देने का स्वामी को पूर्ण अधिकार होता है वैसे ही राष्ट्र रूपी जायदाद के दान देने का अधिकार राजा को था।

## भारत में जातीयता का नाश हुआ

हरिश्चंद्र, नल, दशरथ, युधिष्ठिर और अशोक आदि महाराजाओं का इतना दोष नहीं जितना उस समय के बने

---

*लेखक का 'भारतवर्ष का संक्षिप्त इतिहास' भाग१, पृ० २२२

नियमों का दोष है-यह स्मृतियों का दोष है। आज कल कोई राजा इस प्रकार का घृणित कार्य नहीं कर सकता क्योंकि जातीयता का भाव उन्नत है। किन्तु शोक है कि अति प्राचीन काल से ही हमारे अंदर जातीयता नष्ट रही है, नहीं तो इस प्रकार के उदाहरण न मिलते। इसी कारण शायद जातीयता भारत में अब तक दिखाई नहीं देती। जिस में यह भाव ही न हो कि हम स्वतन्त्र हैं और जो चुप चाप एक राजा से दूसरे राजा के आधीन होने के आदी हों उन के लिये कोई भी राज्य करे-कोई भेद नहीं-उन को आर्यों, यवनों, राक्षसों, अनार्यों में भेद ही नहीं दीख पड़ता, उन में दासत्व और स्वतन्त्रता के भाव उत्पन्न ही नहीं हुए, वहां प्रार्थना के मंत्र 'अदीनाः स्याम' कुछ अर्थ ही नहीं रखते। वहाँ मनु के यह वाक्य :—

सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्।
एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः ॥

निरर्थक हैं या अपनी शारीरिक आवश्यकताओं को कम कर के इस संसार को त्याज्य समझ कर

आत्मा के सुख की तलाश के लिये तपस्या करनी चाहिये- ऐसे अर्थ निकाले जाते हैं। सज्जनो! सच जानिये कि भारत में इस एकसत्ता के राज्य के कारण अब तक दासत्व रहा है। दूसरे देशों ने इस प्रथा को हटा कर स्वदासत्व हटाया और सुखों की उपलब्धि की है।

## अन्धकार में चमत्कार

### मीमांसादर्शन के अनुसार राष्ट्र जायदाद नहीं।

किन्तु हर्ष की बात है कि जैमिनी ऋषि ने राष्ट्र को दान में देने का पूरे तौर पर निषेध किया है बल्कि उन्होंने इस बात पर बल दिया है कि राजा निज की जायदाद में से जो चाहे दान दे सकता है किंतु राष्ट्र की मिलकीयत का किञ्चिदंश दान में नहीं दे सकता है। विश्वजित् यज्ञ की दक्षिणा में क्या देना चाहिये और क्या नहीं उन का इस विषय में आदेश ऐसा स्पष्ट है कि सम्पूर्ण का भाषानुवाद यहां देना उचित प्रतीत होता है:—

" स्वदाने सर्वमविशेषात् ॥ १ ॥

यस्य वा प्रभुःस्यात् इतरस्याऽशक्यत्वात् ॥२॥

अध्याय ६ पाद ७

प्रश्न—: १

" विश्वजित् यज्ञ में सर्वस्व दान दे देता है " इस प्रकार लिखा है।

तो क्या धन की तरह से पिता आदि का देना भी दान है या नहीं ?

उत्तर—१ " दूसरे के अधिकार पर हस्ताक्षेप किये बिना ही अपने से ( आत्मा से ) सम्बन्ध रखने वाली वस्तुओं का देना ही दान है। "

पिता के देने से पिता में से पितापना गुम नहीं हो सकता और नाही उस पिता को लेने वाले व्यक्ति के पिता में से पितापना छूटता है। ( प्रकट है कि युधिष्ठिर महाराज को कोई अधिकार न था कि वह अपनी धर्मपत्नी वा भाइयों को दान दे सकता। ) साथ ही 'सर्वस्व'—इस शब्द में 'स्व' शब्द के चार अर्थ हैं :—

( १ ) स्वयं वह व्यक्ति ( आत्मा ) ।
( २ ) उस व्यक्ति के सम्बन्धी जन ( ज्ञाति ) ।
( ३ ) उस का धन ( धनम् ) ।
( ४ ) उस के अन्य पदार्थ ( आत्मीय ) ।

इस प्रकरण में गौ आदि धन के देने का ही वर्णन है, इस लिये धन आदि का ही विश्वजित् यज्ञ में देना दान है और पिता आदि का देना नहीं ।

विश्वजित यज्ञ में राजा को भूमि देने का अधिकार है या नहीं ?

न भूमिः सर्वान् प्रत्यविशिष्टत्वात् ॥ ३ ॥

अध्याय ६ पाद ७

प्रश्नः—२

क्या सार्वभौम राजा को विश्वजित् यज्ञ में वन, उपवन, तालाब, नदी, पर्वत आदि से युक्त सारी भूमि के दे देने का अधिकार है या नहीं । क्योंकि स्मृतियों में आता है कि "राजा सर्वस्येष्टे ब्राह्मण-

वर्जम् । " अर्थात् ब्राह्मण को छोड़ कर राजा का सब पर अधिकार है ?

उत्तर २–दुर्जनों को शिक्षा देना और सज्जनों का परिपालन करना ही राजा का कर्त्तव्य है और यही राजा का अधिकार है तथा स्मृति का भी यही तात्पर्य है, किन्तु भूमि के देने का अधिकार राजा को नहीं है। क्योंकि जो प्राणी अपने अपने कर्मों के फलों को यहां भोग रहे हैं उन का इस भूमि पर समानरूप से अधिकार है"। अहो ! कैसे उत्तम समष्टिवाद (Socalism) का प्रचार है और राजा का अधिकार कैसा परिमित किया है ?

इस लिये निज की भूमि के देने का अधिकार तो राजा को है पर सारी भूमि या पृथिवी के देने का

अधिकार उसे किसी प्रकार भी नहीं। अतः स्पष्ट है कि प्रजा की आज्ञा के विना किसी राजा महाराजा को राष्ट्र-दान में देने का अधिकार नहीं।

विश्वजित् यज्ञ में अश्व आदि का देना उचित है या नहीं।

अकार्यत्वाच्च ततः पुनर्विशेषः स्यात् ॥ ४ ॥ अध्याय ६ पाद ७

प्रश्न ३—

"दक्षिणा में शेरों को नहीं देता है"

इस प्रकार विश्वजित् यज्ञ के प्रकरण में लिखा है, तो क्या इस का तात्पर्य्य यह है कि शेर को छोड़ कर और सब के देने का अधिकार है?

और आगे लिखा है कि "घोड़े को छोड़ कर सब कुछ दे देना चाहिये।"

इस लिये यह मतलब निकला कि शेर को छोड़ कर सब कुछ दे देवे अर्थात् कभी घोड़ा भी दे देवे और कभी न भी देवे?

उत्तर ३—

"घोड़े को न देवे"

इस की व्याख्या हम दशम अध्याय के आठवें

पाद में करेंगे कि घोड़े को तो न देवे किन्तु क्या देवे। वहाँ इस मन्त्र का प्रमाण देते हुए यह सब स्पष्ट करेंगे।

किन्तु सारांश यह है कि घोड़े को तो किसी हालत में भी न देवे।

विश्वजित् यज्ञ में क्या जो कुछ उस के पास नहीं है वह भी देवे।

नित्यत्वाच्चाऽनित्यैर्नास्ति सम्बन्धः ॥ ५ ॥ अध्याय ६ पाद ७

प्रश्न ४—

पहिले कहा जा चुका है कि सब कुछ ही दे देवे। तो क्या शय्या—कुर्सी आदि जो उस के पास हैं वह दे देवे और जो कुछ उस के पास नहीं है वह भावि में प्राप्त होने वाला धन भी सब कमा के देवे ?

उत्तर ४:—

सब कुछ देवे—इस का तात्पर्य यही है कि जो कुछ उस के पास उस समय हो वह देवे।

विश्वजित् यज्ञ में सेवक का दे देना ठीक है या नहीं ?

शूद्रश्च धर्मशास्त्रत्वात् ॥ ६ ॥ अध्याय ६ पाद ७

प्रश्न ५—जो शूद्र अपने धर्म को समझता हुआ सेवा करता है क्या उस को दास के रूप में दे देना ठीक है ?

उत्तर ५—

जब हम अपने सेवक को तनख्वाह और भोजन आदि देते हैं तो हमारा उस पर अधिकार ही क्या है ? और यदि हम स्वेच्छाचारी ( Despotic ) बन जावें फिर भी दूसरे के स्वत्व ( अधिकार ) को छीनना असम्भव है ।

इस लिये दक्षिणा में सेवक का देना अनुचित है ”

जैमिनी ऋषि की यह अत्युत्तम साक्षी है—आज कल तो प्रत्येक सभ्य राष्ट्र में यह बातें प्रचलित हैं किन्तु अति प्राचीन काल में ऋषियों ने इन नियमों को बनाया, यद्यपि कई राजाओं ने उन्हें भङ्ग किया तथापि बहुतों ने उन पर अमल भी किया होगा ।

## योग्यतम राजा भी उत्तम राज्य नहीं कर सकता ।

अब हम इस बात को तत्ववेत्ता मिल साहब के शब्दों में सविस्तर दिखाते हैं कि योग्य से योग्य

शासक भी क्यों न हो वह भी प्रजा का अभीष्ट तौर पर शासन नहीं कर सकता।

मिल साहब 'प्रतिनिधिराज-प्रणाली' के तृतीयाध्यायमें यों लिखते हैं:—

## आदर्शशासनशैली प्रतिनिधि राज्य है।

१—"चिरकाल से (सम्भवतः आङ्ग्ल स्वतन्त्रता के सम्पूर्ण काल में ही) यह प्रसिद्ध कहावत रही है कि "यदि एक स्वेच्छाचारी अच्छा राजा प्राप्त हो सके, तो एक सत्तात्मक स्वेच्छाचारी राज्य एक उत्तम शासनशैली होगी"। उत्तम राज्य क्या वस्तु है? इस विषय में पूर्वोक्त विचार को मैं सर्वथा हानिकारक दुर्विचार समझता हूं; इस को जब तक दूर न किया जावेगा तब तक राज्यसम्बन्धी हमारे सम्पूर्ण विचारों को यह घातक दुर्विचार विषयुक्त कर देगा।

२—"उक्त विचार में जो कल्पना की गई है, कि एक महापुरुष के हाथों में एक मात्र सम्पूर्ण शक्ति के दे देने से राज्य के सर्व कर्त्तव्यों का पालन धर्म तथा बुद्धिपूर्वक अवश्य होगा, अच्छे कानून बनाये तथा

प्रचलित किये जावेंगे, बुरे नियमों का संशोधन किया जायगा; उत्तम पुरुष विश्वसनीय पदों पर नियुक्त किये जावेंगे, न्याय भी उत्तम रीति से किया जायगा, प्रजा पर करों का भार हलका तथा न्यायपरायणता से बांटा हुआ होगा। यहां तक कि प्रबन्ध के प्रत्येक पद का कार्य ऐसी शुद्धता यथा बुद्धिमत्ता से किया जावेगा जैसा उस देश की अवस्थाओं तथा मानसिक वा आत्मिक उन्नता की मात्रा के अनुकूल होगा।

उक्त कल्पना का अभिप्रायः—

"युक्ति करने के लिये मैं उक्त कल्पना मानने को उद्यत हूं किन्तु इस कल्पना की अतिव्याप्ति की ओर भी मैं अवश्य निर्देश कर देना चाहता हूं, क्योंकि पूर्वोक्त उत्तम प्रबन्ध करने के लिये ऐसी महती शक्तियों की आवश्यकता है जो "अच्छे स्वेच्छाचारी राजा के सारे शब्दों से प्रकट नहीं होतीं, कारण यह कि:—

(क) वह राजा केवल एक अच्छा राजा ही नहीं किन्तु सर्वद्रष्टा भी होना चाहिये।

(ख) सब समयों में, देश के प्रत्येक मण्डल में, राज्य-

प्रबन्ध के सर्व पदों के कार्य तथा चालन की ब्यौरेवार सत्य २ सूचनायें उसे मिलती रहती हों (जो सर्वथा असम्भव है)।

(ग) दिन के २४ घण्टों में जो जगत्पिताने एक बादशाह तथा दीनतम श्रमी को समान दिये हैं, ऐसे विस्तृत प्रबन्धक्षेत्र के सर्व अंशों में वह राजा नियमपूर्वक उचित ध्यान देता हो। (क्या यह सम्भव है ? कदापि नहीं)।

(घ) अथवा न्यून से न्यून अपने प्रजादल में से ऐसे बहुत से दयानतदार और योग्य पुरुषों को बुद्धिपूर्वक चुन सकता हो जो राज्यप्रबन्ध के प्रत्येक मद को अन्यों की निगरानी और आधीनता में रहते हुए चला सकें।

(ङ) फिर विशेष आत्मिक तथा मानसिक योग्यताओं वाली ऐसी कतिपय व्यक्तियों को चुनने के योग्य भी हो जो न केवल बिना निगरानी के विश्वासपूर्वक काम कर सकें किन्तु अन्यों पर भी निगरानी करने में विश्वस्त हों।

## उक्त पांच कामों की कठिनाईः—

थोड़ी मात्रा में भी इस कार्य को करने के लिये जिन योग्यताओं और शक्तियों की आवश्यकता है वे ऐसी विचित्र हैं कि हमारा काल्पनिक और अच्छा स्वेच्छाचारी राजा कदापि इस कार्य को करना स्वीकार न करेगा। केवल उसी अवस्था में स्वीकार करेगा जब उसे असह्य विपत्तियों से बचने के लिये ऐसे काम की शरण लेनी हो; या परलोक में किसी बात की प्राप्ति के लिये तय्यारी करनी हो।

## ५—स्वेच्छाचारी राज्यमें प्रजाकी दुर्दशाः—

"ऐसी बड़ी रक़म हिसाब में लाने के बिना भी हमारी युक्ति स्थिर रह सकती है, कल्पना करो कि राजसम्बन्धी कठिनाई को हम ने पार कर लिया, अर्थात् यथेष्ट राजा हम को मिल गया तब क्या अवस्था होगी? देवताओं के समान मानसिक क्रिया वाला एक मनुष्य होगा जो मानसिक तौर पर शांत मनुष्यों के सर्व मामलों का प्रबन्ध करता होगा। स्वेच्छाचारी राजा के विचार में ही प्रजा का शान्त स्वभाव प्रकट होता है, अर्थातः—

(i) न ही सामूहिक तौर पर वह जाति अथवा न ही उस जाति का प्रत्येक पुरुष अपने दैव के बनाने में किंचित् सिद्धिजनक आवाज़ रखता है।

(ii) अपने सामूहिक लाभों के सम्बन्ध में जाति अपनी इच्छा को उपयोग में नहीं ला सकती।

(iii) उन के लिये सब बातें एक ऐसी इच्छा से निश्चित होती हैं जो उन की अपनी नहीं तथा जिस की आज्ञापालन न करना न्यायविरुद्ध है। ऐसी हकूमत में रहते हुवे किस प्रकार के मनुष्य बन सकते हैं"?

(IV) उन की कर्म तथा ज्ञानेन्द्रियें क्या उन्नति कर सकती हैं?

बस अब भली भान्ति तत्ववेत्ता मिल के शब्दों से एक सत्तात्मक राज्य की श्रेष्ठता की असम्भवता और प्रजा की दुर्दशा का ज्ञान हो गया होगा। अब ऐसे राज्य की अन्य हानियों पर हम प्रकाश डालते हैं,

## वंशागत राज्य की हानियां—

## घात और कपट।

यदि यह नियम हो कि ज्येष्ठ पुत्र गद्दी पर बैठे तो अन्य भाइयों में ईर्ष्या और द्वेष की प्रबल

तरंगें बड़े वेग से उठती रहेंगी । सदैव वे बड़े भाई के मारने में यत्न करेंगे और ज्येष्ठ भाई भी अन्य भाइयों के मारने में या पुत्र वृद्ध पिता के मारने में यत्न करेंगे । मुसलमानों के राज्य में आमतौर और अपने राजपूती राज्यों में यह दृश्य कभी २ दिखाई देते हैं । हिमायूं के भाई राज्यार्थ किस प्रकार निरन्तर २० वर्षों तक लड़ते रहे और अन्त में सब भाइयों को मार कर व क़ैद करके हिमायूं ने राज्य प्राप्त किया-यह बन्धुवर्ग जानते होंगे। जहांगीर ने अपने पुत्र खुसरो को क़ैद कराया क्योंकि वह बादशाह बनना चाहता था । जहांगीर के विरुद्ध उस के पुत्रों और उस की बीबी नूरजहांन कैसे यत्न करती रही ! आख़िर जब शाहजहान सिंहासन पर बैठा तो उस ने सर्व राजपुत्रों को मरवा डाला । एवम् औरंगज़ेब ने राज्य प्राप्त करने के लिये क्या २ प्रपञ्च किये ! यह खूनख़ारी, निर्दयता, कपट क्या आज कल के प्रजातन्त्र राज्य में होते हैं? थोड़ा बहुत कपट वोटों के लेने में और दलों के विभाग में होता है किन्तु अन्य घृणित बातों का दृश्य नहीं दीख पड़ता । इस कपट को भी हटाने का प्रयत्न किया

जा रहा है किन्तु देखिये शुक्राचार्य्य स्वयम् क्या शिक्षा राजा को देते हैं:—

१—'अरक्षित राजपुत्र धनलोभ के कारण राजा को मार देते हैं और रक्षित भी जहाँ कहीं अवसर पावें मारने को तत्पर हो जाते हैं, अतः बालक राजपुत्रों को सुरक्षित रखना चाहिये। निरङ्कुश, मदोन्मत्त, गज की न्याईं राजपुत्र पिता और भाई को भी मार देता है अन्यों का तो क्या ही कहना है? मूर्ख भी स्वामित्व की इच्छा करता है, बुद्धिमान् का तो क्या ही कहना है?

२—"दुष्टाचारी बन्धुओं को राष्ट्रोन्नति के लिये व्याघ्रादियों, शत्रुओं या छल से मार देना चाहिये, नहीं तो वह प्रजा और राजा के नाश के कारण होते हैं।

३—"राजा को चाहिये कि वह क्षण भर भी भृत्य, स्त्री, पुत्र, शत्रु से असावधान न हो और साधु गुणसंपन्न पुत्र को भी कभी पूरी प्रभुता न देवे, क्योंकि वह बड़े २ अनर्थों का कारण होता है, अतएव विष्णु आदिकों ने भी अपने पुत्रों को पूर्ण अधिकार नहीं दिये। अपने जीवन के अन्तकाल में राजा पुत्रको स्वाधिकार देवे, क्योंकि युवराज लोभादि के वश होने से क्षण भर भी राज्य को नहीं संभाल सकते।"

## प्रजातन्त्र राज्य में घात कपटका अभाव।

वंशागत राज्य में यह अधर्म, कपट, छल, अविश्वास, स्वार्थवश दूसरों का घात होता है किन्तु प्रजातन्त्र राज्य में इन बातों का अभाव ही होता है क्योंकि प्रधान को मारने से कुछ बन नहीं सकता। घात का उद्देश भी मौजूद नहीं होता। प्रत्येक पुरुष को यह विश्वास होता है कि यदि मैं प्रधानत्व के योग्य हूंगा तो मुझे राज्य के लिये अवश्य चुना जावेगा। फिर एक प्रधान का आयु भर राज्य पर ठेका नहीं होता। ३ व ५ वर्षों के पश्चात् उसे शासन छोड़ना पड़ता है और अन्यों को निर्वाचित होने का अवसर मिलता है। इस कारण सब सन्तुष्ट रहते हैं। क्या ही विचित्र घटना है कि एक सत्ता के राज में राज्य करने की इच्छा करना वा उस के लिये कोशिश करना पाप है, देशद्रोह है—राजद्रोह है और परमात्मा के नियमों के प्रतिकूल कहा जाता रहा है किन्तु अमेरिका, फ्रांस, स्विटज़रलैण्ड जैसे देशों में खुलम खुला राज्यप्राप्ति का यत्न किया जाता है। प्रत्येक सुयोग्य पुरुष जो शासन का भार उठा

सकता है खुले दिल तन मन धन से यत्न करता है और ऐसा करना प्रशंसनीय समझा जाता है— इसके लिये उसे कोई दण्ड नहीं मिलता। इस प्रकार आप ने देखा कि एकसत्ता के राज्य में रक्त की नदियां बहा कर क्रूर व लोभी जन सिंहासनों पर बैठते हैं। पूर्व राजाओं के वंशों का नाश करते हैं ताकि उन का मुक़ाबिला कोई न कर सके। सारी प्रजा उस राजा को देवता मान कर पूजती है। अपने आप को दास समझ कर कभी राजा बनने की इच्छा नहीं कर सकती, उनमें से जो राजा बनने का यत्न करे तो वह (Treason) राजद्रोह करता हुआ समझा जाता है, उसे प्राणदण्ड मिलता है। किन्तु प्रजातन्त्र राज्य में विष्णु, गोपाल, मोहन, सोहन, राम, जैद, बकर सब प्रधान बनने की इच्छा करसकते हैं और उसके लिये खूब यत्न होसक्ता है-इसी तत्वमें पृथिवी आकाश का अन्तर है। एक सत्ता के राज्य में प्रजा की शक्तियाँ मर जाती हैं किन्तु प्रजात्मक राज्य में प्रजा की सर्व शक्तियों का -पूर्ण विकास होता है। दासत्व ( गुलामी ) और स्वाधीनता, स्वातन्त्र्य के शब्दों में जो हानि लाभ पड़े हैं उन को स्मरण करना चाहिये।

(२) वंशागत राज्य रीति में योग्य राजाओं की शृंखला नहीं मिल सकती। एक उत्तम राजा हो, तो ४० बुद्धू राजा मिलेंगे। आप मुसलमानी राजाओं की कथा लें। १२०६ से १८५७ तक थोड़ा बहुत राज्य देहली में मुसलमानों का रहा। इस समय में लग भग ५६ बादशाहों ने राज्य किया किन्तु, बताइये कि इन में से कितने सुयोग्य बादशाह हुए? गिनती के ५ वा ६ राजा! 'खोदा पहाड़ और निकला चूहा' वाला सिद्धांत यहां पर लगता है। यही हाल इङ्गलैण्ड आदि देशों के राजाओं का कहा जा सकता है। परम्परा के राज्य में कौन कह सकता है कि योग्य राजा का योग्य पुत्र होगा। आप कोठियों, कारखानों और दुकानों का दृष्टान्त लीजिये। एक उत्साही पुरुष कोठी चला जाता है व धन जमा कर जाता है उस की सन्तान उस का नाश कर देती है, वैसे ही क्रामवैल ने राज्य बनाया, अशोक, समुद्रगुप्त, अलाउद्दीन, सिकन्दर, लोधी, औरंगज़ेब, शिवा जी आदि ने राज्य प्राप्त किया और उन के पुत्रों ने उसे गंवा दिया। उन की सन्तानों में से कई राजा शैतान के अवतार थे किन्तु 'कहरे दर्वेश बर जाने दर्वेश' के सिद्धांत के अनुकूल

प्रजा उन के आधीन दुःख सहन करती रही। प्रजा-तन्त्र राज्य में ऐसी बातें नहीं हुआ करतीं, यदि अज्ञान से कोई मूर्ख और खल पुरुष प्रधान बन जावे जो घटना लगभग असम्भव है तो वह पांच वर्षों तक कोई ख़राबी कर सकता है। औरंगज़ेब के समान ५० वर्षों तक तो वह प्रजा को ख्वार नहीं कर सका, किन्तु यह भी भूल है कि प्रधान बहुत हानि पहुंचा सकता है क्योंकि उस के अधिकार में कोई नियम बनाना व तब्दील करना नहीं होता, जो नियम बने हैं उन्हीं पर अमल करना और करवाना उस का कर्त्तव्य है। प्रधान तो पिंजरे में बन्द शेर की तरह है। जो बालक तक को भी कोई हानि नहीं पहुंचा सका किन्तु एक सत्ता के स्वेच्छाचारी राजा ( absolutely despotic king ) प्रायः नियमपालक नहीं होते। आप स्वयं ही विचारिये कि ऐसे राजा क्या २ अत्याचार नहीं कर सकते? अतः वंशपरम्परा की रीति अतीव घृणित और हेय है। प्रतिनिधि शासन शैली ही उत्तम है।

( ३ ) राजाओं के आचार भ्रष्ट होने से प्रजा के आचार भ्रष्ट होते हैं। कैकबाद, अलाउद्दीन, जहांगीर

और कई ब्राह्मणी बादशाहों ने लोगों की बहु बेटियों पर जो जुल्म किये इतिहास उन का साक्षी है। उन के काल में प्रजा के आचार भी भ्रष्ट थे, "यथा राजा तथा प्रजा" का सिद्धांत तो प्रसिद्ध है। भारतकी न्याईं अन्य देशों में भी यही अवस्था रही है।

इंगलैण्ड के दर्बारों ( Courts ) की खराबियाँ पढ़नी हों तो रेनाल्ड ( Reynolds ) के उपन्यास पढ़ने चाहियें, लूई XIV के दर्बार की ख़राबियों को देखना हो तो उसकी जीवनी पढ़िये। रूस के ज़ारों की अवस्था भी देखने योग्य है किन्तु अमेरिका के प्रधानों के जीवनों को भी देखिये। कैसे वे लोग इन बादशाहों के सामने ऋषि मालूम होते हैं! बादशाहों की बुराइयाँ और मुसलमानी बादशाहों के दुराचारों पर कई पुस्तकें लिखी जा सकती हैं– इस लिये यहां उदाहरण तक भी नहीं दिये जा सकते। उन के मद्यपान, चापलूसी, नाच रंग, दुराचारों पर कवियों ने रंग चढ़ा कर छिपाना चाहा हो तो भला सही, किन्तु ऐसा करना कठिन था।

## परिणाम।

इस लिये जो २ जातियां इस संसार में घात,

निर्दयता, दुराचार, भ्रष्टाचार, कपट, चापलूसी आदि घातक दोषों का दूरीकरण चाहती हैं। जो योग्य पुरुषों, श्रेष्ठ आचारी राजाओं से शासित होना चाहते हैं, वे वंशागत एकसत्तात्मक स्वेच्छाचारी राज्य के आधीन नहीं रहतीं। आगामी संसार में ऐसी रीति कभी प्रचलित नहीं रह सकती, इस के दिन गिने हुए प्रतीत होते हैं। सब सभ्य देशों में प्रजा का राज्य होगा। इंगलैण्ड ने सब देशों को प्रजातन्त्र राज्य सिखाया है उस का ही अनुकरण अमेरिका, फ्रांस, जर्मनी, इटली, जापान ने किया था और यद्यपि इस समय हमारे सम्राट् जार्ज पंचम इंगलैण्ड के राजा हैं अर्थात् वहाँ परिमित एक सत्ता का राज्य है तथापि महाराजा बुद्धिमान् हैं--राज्यकार्य्य में हस्ताक्षेप नहीं करते-उन के अधिकार परिमित हैं। वस्तुतः प्रजा से निर्वाचित लोकसभा और मन्त्रीवर्ग के हाथों में राज्य है इस लिये वहाँ यद्यपि Republic विराज्य नहीं तथापि प्रजातन्त्र राज्य काफ़ी दृढ़ है। इंगलैण्ड ने इस प्रजातन्त्र राज्य की शैली अपनी बस्तियों को भी प्रदान की है और समय आने पर आशा है कि भारत में भी वह शैली प्रदान की

आवेगी। किन्तु हमें नियमों में रहते हुए उस शैली के कर्म सीखने चाहियें ताकि पक्व अवस्था में इंगलैण्ड की ओर से हमें प्रजातन्त्र राज्य का दान मिल सके। परमात्मा करे कि वह शुभ दिन शीघ्र आवें जब सारे संसार में प्रजातन्त्र राज्य का प्रचार हो।

# अध्याय ६

## वेदोक्त राज्य

वेदों में शासन के बारे में परमात्मा की ओर से जो उपदेश दिये गये हैं यदि उन पर प्रजाजन अमल करें तो उन की सर्व प्रकार की उन्नति का मार्ग सीधा और सुगम हो जावे, मन्त्रों के अर्थों में बहुत वादविवाद है इस कारण चारों वेदों में शासन के बारे में जो कुछ कहा गया है उसे पूर्णतया यहाँ अङ्कित नहीं किया जा सकता और न ही उस के आधार पर व्यापक परिणाम निकाले जा सकते हैं किन्तु जिन मन्त्रों के अर्थों में बहुत विवाद नहीं उन के आधार पर यह परिणाम राज्य के सम्बन्ध में निकलते हैं कि—

(१) शासकों के कई भेद हैं:—राजा, विराट्, स्वराट्, महाराट् आदि।

(२) इन की सहायतार्थ भिन्न प्रकार की लोक सभाएं हैं जैसे आमन्त्रण, सम्मति तथा सभा-इन भेदों से तीन प्रकार की उत्तरोत्तर कम अधिकारों वाली सभाएं कही हैं।

(३) राजागण इन सभाओं की ओर से निर्वाचित होने चाहियें।

(४) राजाओं को राजसभाओं की ओर से पद-च्युत करना चाहिये।

(५) पदच्युत हुए राजा को राजसभा की स्वीकृति से पुनः भी अभिषिक्त किया जा सकता है।

(६) सभाओं में बहुपक्षानुसार ही फ़ैसले हों क्योंकि प्रत्येक सभ्य स्वमतों के सर्वमान्य होने की प्रार्थना करता है।

(७) राजनियम भी राज-सभा बनावे।

(८) प्रत्येक देश में स्वजाति शासक होने चाहियें, राज्य विदेशियों के हाथ में न हो।

(९) सारी जनता को राज्य करने के योग्य ब-

नाना चाहिये और ईश्वर का उपदेश है कि हरएक आदमी अपने देश का नहीं, बल्कि संसार भर का सार्वभौम प्रधान बनने की चेष्टा करे। राजा बनने की चेष्टा और यत्न करना पाप नहीं।

अथर्ववेद में राज्यविषयक ऋचायें बहुत स्पष्ट आई हैं—अन्य वेदों की भी यहाँ पर सहायता ली जावेगी किन्तु पहिले क्रमवार अथर्ववेद का ही इस लेते हैं ताकि उक्त सिद्धान्तों की पुष्टि मन्त्रों द्वारा की जावे। आशा है पाठकवृन्द निम्न मन्त्रों के अर्थों को सावधानी से पढ़ेंगे।

अथर्व ३।४।३ से स्पष्ट ज्ञात होता है कि (i) राजागण निर्वाचित होवें, (ii) राज्य-कार्य चलाने के लिये एक सुयोग्य राजा की आवश्यकता है, (iii) राजा सर्वप्रिय होना चाहिये, (IV) सिंहासन पर बैठ कर स्वयम् भोगों में मग्न न होवे, बल्कि प्रजा की समृद्धि धन दौलत की वृद्धि का यत्न सर्वदा करता रहे, (V) प्रजा के प्रतिनिधियों को राजा यदि आमन्त्रित रक्खे और प्रजावर्ग में से स्त्रियां तथा वन के वीर युवक

पुत्र भी सन्तुष्ट हों तो ही राजा को कर मिल सकते हैं। वे मन्त्र यह हैं:—

आ त्वा गन् राष्ट्रं सह वर्चसोदिहि
प्राङ् विशाम्पतिरेकराट् त्वं विराज।
सर्वास्त्वा राजन् प्रदिशो ह्वयन्तु
पसेद्यो नमस्यो भवेह ॥ ३. ४.

समारोह सहित राज्य तेरे पास आया है। उठो, जाति के स्वामिन्! एकाकी राजा! अब प्रकाशयुक्त होवो। हे राजन्! सब प्रान्त तुम्हारा अभिनन्दन करें और कर्मचारी दल तुम्हें नमस्कार करें।

इन्द्रेन्द्र मनुष्याः परेहि संह्यज्ञास्था वरुणैः संविदानः। स त्वायमह्वत् स्वे सधस्थे स देवान् यक्षत् स उ कल्पयाद् विशः ॥ ३. ४. ६

हे राजन्! मनुष्यों—जनता के सामने आइये। आप अपने निर्वाचन करने वालों के अनुकूल हैं। इस पुरुष (पुरोहित) ने आप को आप के योग्य स्थान पर यह कह कर बुलाया है कि "इसे देश की स्तुति करने दो और जाति [ विशः ] को भी सुमार्ग पर चलाने दो।"

इस प्रकार विस्पष्ट है कि राजागण निर्वाचित होते थे किन्तु इस विषय में अन्य उत्तम ऋचाएं भी उसी वेद में मिलती हैं।

त्वां विशो वृणुतां राज्याय
त्वामिमाः प्रदिशः पञ्चदेवीः।
वर्ष्मन् राष्ट्रस्य ककुदि श्रयस्व
ततो न उग्रो विभजा वसूनि॥ ३. ४.
अच्छ त्वायन्तु हविनः सजाता,
अग्निर्दूतो अजिरः संचराति।
जायाः पुत्राः समनसो भवन्तु,
बहुं बलिं प्रति पश्यासा उग्रः॥

इन मन्त्रों का अर्थ यह है:--"हे राजा! राज-कार्य चलाने के लिये प्रजा तुझे निर्वाचित करे। The nation shall elect thee to kingship Griffith. इन पांचों प्रकाशयुक्त दिशाओं में प्रजा तुझे निर्वाचित करे। राष्ट्र के श्रेष्ठ सिंहासन का आश्रय लेकर तू हम लोगों में (प्रजाओं में) उग्र होते हुए भी धन की बांट किया कर। सजाति-तेरे अपने देशनिवासी ही तुम्हें बुलाते हुए तेरे पास आवें। तेरे साथ

चतुर तेजयुक्त एक दूत हो। राष्ट्र में जितनी स्त्रियां और उन के पुत्र हों, वे तेरी ओर मित्रभाव से देखें, तब तू उग्र होकर बहुबलि ग्रहण करेगा।" स्पष्ट है कि यदि 'जायाः' स्त्रियां समनसः न हों, राजा से वैमनस्य करें तो देश में शान्ति नहीं हो सकती जैसा कि आजकल इंगलैंड में होरहा है। क्या उस से यह परिणाम नहीं निकलता कि राजा के निर्वाचन करने में स्त्रियां भी शामिल होनी चाहियें- अर्थात् राज-सभाओं में उन के प्रतिनिधि होने चाहियें?

अब अथर्ववेद का ३. ५. ७ मंत्र देखिये, इस से भी राजा निर्वाचित ठहरता है क्योंकि कहा है कि—

ये राजानो राजकृतः सूता ग्रामण्यश्च ये।
उपस्तीन्पर्ण मह्यं त्वं सर्वान्कृण्वभितो जनान्॥

'हे सर्वरक्षक या सर्वव्यापक प्रभो! इस देश में जितने राजा हैं, जितने राजाओं को निर्वाचित करने वाले राजसभाओं के सभ्य (king-makers) हैं, जितने सैनिकों में अधिपति सूत हैं और जितने ग्रामों में रहने वाले सरदार हैं-इन सर्व को और साथ ही सम्पूर्ण प्रजादल को मेरी इच्छा के अनुकूल चलाइये।

निर्वाचित राजा के लिये ऐसी प्रार्थना करनी आवश्यक है ताकि उसे अपने स्वामियों का स्मरण रहे क्योंकि यदि वे स्वामी विमुख हो जावें तो राजा को पदच्युत कर देंगे।

## लोकसभाएं।

अब लोकसभाओं के सम्बन्ध में कई ऋचाएं दी जाती हैं:—

अथर्व० ४. २१. ६ में ग्रामीण सभाओं का वर्णन है जहां गौओं की वृद्धि के भी प्रश्न होने चाहियें।

भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो
बृहद्वो वय उच्यते सभासु ।

'अपनी भद्र वाणियों से मेरे घर को भद्र कीजिये, अपनी सभाओं में हम तुम्हारी ( गौओं की ) बहुत प्रशंसा करते हैं।

१२. १. ५६ में कई प्रकार की सभाओं का वर्णन यूं है:—

ये ग्रामा यदरण्यं याः सभा अधि भूम्याम् ।
ये संग्रामाः समितयस्तेषु चारु वदेम ते ॥

ग्रामों, जंगलों और भूमि पर की सर्वसभाओं में, एवम् लोकसमूहों तथा समितियों में तेरे बारे में प्रशंसनीय वाक्य कहूँ।

७. १२. की सर्व ऋचाएं राजविषय में बड़ी उपयोगी हैं:—

सभा च मा समितिश्चावतां,
प्रजापते दुहितरौ संविदाने।
ये नो संगच्छा उप मास शिक्षा-
च्चारु वदानि पितरः संगतेषु ॥

विद्म ते सभे नाम नरिष्टा नाम वा असि।
ये ते के च सभासदस्ते में सन्तु सवाचसः ॥
एषामहं समासीनानां वर्चो विज्ञानमाददे।
अस्याः सर्वस्याः संसदो मामिन्द्र भागिनं कृणु ॥
यद्वो मनः परागतं यद्बद्धमिह वेह वा।
तद्व आ वर्तयामसि मयि वो रमतां मनः ॥

अर्थात्प्रजापति-लोकपालक ईश्वर की दो पुत्रियां

( क ) सभा और समिति नामी-एक मन होकर मेरी रक्षा करें। जिस किसी को मैं मिलूं वह मेरा मान करे [ ख ] और मुझे सहायता देवे। हे पितर, संगतियाँ-सभाओं में मेरे वाक्य रोचक हों [ ग ] हे सभे ! हम तेरा नाम जानते हैं । तेरा नाम वाद विवाद है ( घ ) जो कोई भी सभा के सभ्य हों वे सर्वाचस मेरे वचनों में हां करने वाले होँ।

---

( क ) सभा और समिति राजाओं की ओर से निर्मित संस्थाएं नहीं बल्कि राजाओं के भी राजा- जगदीश की इच्छा के अनुसार वे दैवी संस्थाएं हैं। राजागण उन की उपेक्षा नहीं कर सकते, बल्कि राजाओं का यह यत्न हो कि ग्रामीण, नागरिक तथा देशीय सभाओं में एक सम्मति होकर शाँति रहे। ( ख ) इस वाक्य से राजागण बड़े साधारण न प्रतीत होते हैं क्योंकि उनको देवता मान कर पूजा करने का भाव नहीं मिलता। ( ग ) सभा में रोचक वाक्य बोलकर यदि प्रधान, सभा का बहु पक्ष अपनी ओर कर सकता है तो उसकी इच्छा पूर्ण हो सकती है, केवल आज्ञाओं से कुछ नहीं हो सकता। [घ] इस वादविवाद शब्द से स्पष्ट है कि राजसभाओं में

"इस सभा में बैठे हुए सभ्यों का वर्चस् तेज तथा विज्ञान मैं लेता हूं--अर्थात् उन की आत्मिक तथा मानसिक शक्तियां से मैं ठीक लाभ उठा सकूं, किसी प्रकार से उन का दुरुपयोग न करूं। आप ही, हे शक्तिमान् परमात्मन्! इस सभा के सर्व सभ्यों में मैं भगिनं भाग्यवाला हूं--मैं ही प्रधान बना रहूं, मुझे पदच्युत न किया जावे और अपना शासन समय ठीक तरह निभा सकूं।"

"चाहे आप के मन अन्य विषयों में लगे हों या इधर उधर बंधे हों मैं उन को अपनी ओर खींचता

---

परस्पर एक दूसरे की सम्मतियों को जानकर प्रत्येक विषय पर पूरा वादविवाद होकर बहु पक्ष से निश्चय होना चाहिये और सभ्यों की स्वीकृति लेना राजा गण के लिये आवश्यक है किंतु यह भी बड़ी विचित्र बात है कि आँगलभाषा का शब्द Parliament (लोकसभा) फ्रांसीसी भाषा का parlement और जर्मन भाषा का Parliament शब्द Parler, to speak भाषण करने से निकला हो और वेद में भी भाषण कराने वाली संस्था का नाम सभा हो।

हूं ताकि मुझ में ही आप के मन रमण करें; आप का मुझ में विश्वास हो और इस कारण आप किसी अन्य पुरुष को प्रधान बनाने की चेष्टा न करें" ।

सभाओं के सम्बन्ध में उपरोक्त वचन स्पष्ट हैं किन्तु सभाओं का उत्तरोत्तर अधिकार तथा उन का प्रकार दिखाने के लिये निम्नमन्त्र बहुत रुचिकर होंगे। ग्रिफत्थ साहब ने इन मंत्रों का जो अर्थ किया है उस में वे ही कहते हैं कि सभा ग्राम की संगति का नाम है, समिति मंडल की संगति का और आमन्त्रण राष्ट्र की संगति का नाम है । इस प्रकार ग्रामीण पञ्चायतों, नागरिक सभाओं ( म्यूनिसिपल कमेटियों ), Distrcit Boards or County Councils माण्डलिक समितियों और राष्ट्रसभा Parliament बनाने का आदेश ईश्वर की ओर से दिया गया है। साथ ही प्रभु ने तीन-बार स्पष्ट शब्दों में आज्ञा दी है कि जो राजा इन तीन प्रकार की लोकसभाओं को नहीं बनाता, उसे प्रजावर्ग राज्य करने में सहायता न दें । उसे Boycott बायकाट करना तो एक ओर रहा बल्कि उसे राजा ही न बनाया जावे ॥

निम्न ऋचाओं तथा उनके शब्दार्थ के पाठसे उक्त सिद्धान्तों का पूरा २ ज्ञान होजावेगा:—

सोदक्रामत् सा सभायां न्यक्रामत् ॥ ८ ॥
यन्ति अस्य सभां सभ्यो भवति य एवं वेद ॥ ९ ॥
सोदक्रामत् सा समितौ न्यक्रामत् ॥ १० ॥
यन्ति अस्य समितिम्, सामियोभवति, य एवं वेद॥११॥
सोदक्रामत् सामन्त्रणे न्यक्रामत ॥ १२ ॥
यन्त्यस्यामन्त्रणं आमन्त्रणीयो भवति य एवं वेद ॥ १३ ॥

अथर्ववेद ॥ ८।१० ॥

अर्थात "विराट् ऊपर उठी और वह (i) सभा में परिणत हुई। जो यह जानता है, वह सभा के योग्य होता है और लोग उसकी सभा में जाते हैं। विराट् आगे बढ़ी, और (ii) समिति में परिणत हुई। जो यह जानता है वह समिति के योग्य होता है और लोग उसकी समिति में जाते हैं। विराट् फिर आगे बढ़ी और (ii) आमंत्रण में परिणत हुई। जो यह जानता है, वह आमन्त्रण के योग्य होता है और उस से मन्त्रणा वा विचार करने के लिये लोग आतेहैं"।

अन्त में अथर्ववेद की दो ऋचाएं १५. ९. १-२और १८. ५५. ६ की भेंट में आपकी जाती है जिस से पता

लगेगा कि राजा के लिये समिति बनाना आवश्यक है और साथ ही अपनी सभा के सभ्यों की सन्मति के अनुसार चलना भी ज़रूरी है—

"स विशोऽनुव्यचलत् । तं सभा च समितिश्च सेना च सुरा चानुव्यचलन् ।

उस ईश ने लोगों का ख्याल किया तो उनकी रक्षार्थ उसे सभा, समिति, सेना और सुरा का ख्याल भी आगया--अर्थात् इनके बिना प्रजा रक्षित नहीं रह सकती, इनका बनाना आवश्यक है ।

सभ्ये सभां मे पाहि ये च सभ्याः सभासदः ।

हे सभाओं के अधिपति ईश्वर ! जो इस सभा के योग्य सभ्य हैं वे मेरी सभा की रक्षा करें" ।

स्पष्ट है कि राजाओं की ओर से सभा राष्ट्रका एक आवश्यक अङ्ग समझा जाना चाहिये नहीं तो राजाओं के मुख में ऐसी प्रार्थना रखने का क्या उद्देश था ?

## ऋग्वेद की साक्षी ।

ऋग्वेद ३. ३८. ६ में भी ईश्वर नें उक्त प्रकार का उपदेश किया है :—

त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि
परि विश्वानि भूषथः सदांसि ॥

राजागण सुखप्राप्ति तथा विज्ञानवृद्धि के लिये तीन सभाएं: विद्यासभा, धर्मसभा, राजसभा-या सभा, समिति और आमन्त्रण बनाकर सम्पूर्ण प्रजा को विद्या स्वातन्त्र्य धर्म सुशिक्षा और धनादि से अलंकृत करें। ऋग्वेद ५। २। ४१ में कहा है कि-

राजानावनभिद्रुहा ध्रुवे ।
सदस्युत्तमे सहस्र स्थूण आसाते ॥

'जो राजा हज़ार स्तम्भों वाले उत्तम और दृढ़ सभाभवन में बैठते हैं वे द्रोह नहीं करते"। प्रजावर्ग की सम्मति से जो शासकगण राज्य करते हैं और ऐसे राज्य करने की आदत पड़गयी हो तो न प्रजा उनका द्रोह करती है और न वे प्रजा से द्वेष करते हैं।

ऋ० ९. ९२. ६ में अतीव सुन्दर वचन कहे हैं:—

राजा न सत्यः समितीरियानः

'समिति—लोकसभा में जानेवाला राजा ही सत्य श्रेष्ठ समझना चाहिये'। लोकमत के माननेवाले राजा को ही उत्तम कहा है। राजा गण चुने जावें

अर्थात् वे राजा Kings नहीं प्रत्युत प्रधान Presidents हों। उन के अधिकार बहुत परिमित और संकुचित हों, इस कारण एक सत्तात्मक राज्य की सर्व बुराइयों का दूरीकरण करने वाला प्रजासत्तात्मक राज्य ही बताया है। इन आशाओं के विरुद्ध अधिकारप्रेमी-अपने तईं देव मानने वाले राजाओं का यह विश्वास होता है कि शासन में प्रजा का कोई अधिकार नहीं होना चाहिये। इंग्लैंड के राजा चार्लस प्रथम को प्रजा ने अत्याचारी, देशविद्रोही, घातक और जाति के उच्च आदमियों का शत्रु कहकर क़तल करवाया, कि किन्तु क़तल के कुछ मिन्ट पूर्व उसने कहा, था For the people truly I desire their liberty and freedom as much as anybody whatsoever; but I must tell you that their liberty and freedom consists in having a government; it is not in their having a share in their Government; that is nothing pertaining to them." इस का अभिप्राय यह है कि "मैं सच्चे दिल से प्रजा की स्वतन्त्रता उस मात्रा में चाहता हूं जिस मात्रा में कोई भी चाहता होगा किन्तु मैं आपको अवश्य कहता हूं कि आपकी स्वतन्त्रता और स्वाधीनता राज्य की सत्ता में है न कि उस राज्य में भाग लेने

से शासन के काम का कोई सम्बन्ध प्रजा के साथ नहीं"। दैवी अधिकारों को मानने वाले चार्ल्सके मुख से यही शब्द ही निकल सकते थे किन्तु यह तर्क और वेद के विरुद्ध हैं जहां राज की सत्ता आज कल आवश्यक है, वहां प्रजा के लिये यह निश्चय करना भी आवश्यक है कि किस प्रकार की राज-शासन शैली उनके लिये परम हितकारी है। साथ ही यह निर्णय करना ज़रूरी है कि उस राज प्रणाली में प्रजा का कितना भाग उस के अधिकारों का पूर्ण रक्षक होसकता है। यही बातें वेद ने बड़े बल से बताई हैं।

## राजा को पदच्युत करना

राजाओं को पदच्युत करने की ऋचाएं वेदों में मिलती हैं किन्तु विस्तार भय से यहां पर तीन मंत्र दिये जाते हैं।

आत्वा हार्षमन्तर्भूर्ध्रुवस्तिष्ठा विचाचलत्।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मात्वद्राष्ट्रमधिभ्रशत ॥

Here art thou, I have chosen thee: stand steadfast and immovable. Let all the classes desire thee Let not thy Kingship fall away.

अर्थात् "यहाँ तू है; मैंने तुझे चुना है; स्थिरता और दृढ़ता पूर्वक खड़ा रह, सब श्रेणियों के लोग तेरी इच्छा करें। तेरा राजत्व तुझ से भ्रष्ट न हो।"

इस मन्त्र से स्पष्ट होता है कि वेद के अनुकूल प्रजा से एक मनुष्य राजा चुना जाना चाहिये। यदि ऐसा अर्थ न हो तो "मैंने तुझे चुना है" और "सब प्रजा तेरी इच्छा करे" ऐसे शब्द क्यों आये इन वाक्यों से भी सिद्ध होता है, कि प्रजा की इच्छा के विरुद्ध कोई राजा राज्य नहीं कर सकता और "तेरा राज्य तुझसे भ्रष्ट न हो" यह वाक्य डङ्के की चोट से कह रहा है कि नियम विरु: चलने से राजा को पदच्युत करदेना चाहिये।

ध्रुवो ऽच्युतः प्रमृणीहि शत्रू-
ञ्छत्रूयतो ऽधरान् पादयस्व।
सर्वा दिशः संमनसः सध्रीची-
र्ध्रुवाय ते समितिः कल्पतामिह॥
अथर्वेद ६।८८।३

अर्थात् "हे राजा! तू स्थिर हो पदच्युत न होना, शत्रु का संहार कर, शत्रुओं के समान आचरण करने वालों को नीचे गिरा, सब दिशाओं में लोग एक

सन्नद्ध होकर एकता और मेल से काम करने वाले हों और अपनी स्थिरता के लिये समिति स्थापित कर।" यह भी राज्याभिषेक का मंत्र है। इसमें भी स्पष्ट कहा है कि "राजन्! सुकर्म करते हुए तुम ध्रुव हो सकते हो किन्तु यदि तुम कुशासन करोगे तो तुम्हें राज्य से हटा दिया जावेगा -अतः ऐसे काम मत करना जिसके कारण तुम्हें पदच्युत करना पड़े" ।

अथर्ववेद के ३. ३. ५ मंत्र से जाना जाता है कि पदच्युत राजा के पुनर्निर्वाचन की व्यवस्था भी है और राष्ट्र सभा का बहुमत होने पर पदच्युत राजा फिर सिंहासन पर बैठ सकता है। यदि वेद के राजा का निर्वाचन न हो सकता और अनुकूल प्रजा की अनुकूलता विना ही कोई राजा हो सकता तो इस मन्त्र की कोई आवश्यकता न थी। उक्त मन्त्र इस प्रकार है:—

ह्वयन्तु त्वा प्रतिजनाः प्रतिमित्रा अवृषत।
इन्द्राग्नी विश्वे देवास्ते विशि क्षेममदीधरन्॥

इसका अर्थ यह है "हे पुनः निर्वाचित राजा! तेरे विरुद्ध पक्ष के लोग भी तेरी सहायता करें, तेरे मित्रों ने तुझे पुनः निर्वाचित किया है, इन्द्र, अग्नि और सब

देवताओं ने तेरा सुख, यश क्षेम प्रजा में ही रखा है।"

वश प्रजातन्त्र राज्य के तत्वों को प्रकट करने वाला यह अतीव अनुपम मन्त्र है क्योंकि

( १ ) पहिले इस के 'प्रतिजन, प्रतिमित्र' शब्दों पर ध्यान दीजिये। 'प्रतिमित्र' के अर्थ ऊपर तो पुनः मित्र' के किये गये हैं किन्तु 'प्रतिजन' की उपमा से प्रति का अभिप्राय यहां 'विरुद्ध' लिया जावे न कि 'पुनः'—तो बहतर होगा अर्थात् जो लोग पदच्युत होने से पूर्व तेरे मित्र थे किन्तु फिर 'प्रतिमित्र-अमित्र होकर उन्होंने भी तेरे 'प्रतिजनों' के साथ मिल कर तुम्हें पदच्युत किया था—उन्होंने फिर तुम्हें राजा चुना हैं। राज्य में कई दल होते हैं—इंग्लैंड में इस समय उदारों और अनुदारों के दो प्रधान दल हैं, इन में से एक दल राजा का मित्र हो सकता है और दूसरा शत्रु। किन्तु राजा के अत्याचारों अर्थात् Constitution राजव्यवस्था के नियमों के पालन न करने पर उस के मित्र भी शत्रु=प्रतिमित्र हो सकते हैं। प्रतिजनों के साथ मिल कर लोक-सभा में सब दल सर्वसम्मति से राजा को पद-

च्युत कर सकते हैं। किन्तु फिर उस राजा सभापति की पार्टी बलवती होने और उस की ओर से सुशासन के प्रण दिये जाने पर फिर से-दोनों दल उसे राजा-प्रधान चुन सकते हैं।

( २ ) किन्तु अब इस पुनः निर्वाचित राजा को एक अत्युत्तम शिक्षा परमात्मा की ओर से मिल सकती है जो मन्त्र के दूसरे पद में कही गई है:"इन्द्र अग्नि और सब देवताओं ने तेरा क्षेम—सुख, यश, समृद्धि, रक्षा का आधार प्रजा पर ( विशि ) रक्खा है। अर्थात् हे राजन्! तुम्हें स्मरण रहे कि इस पृथिवी पर तुम्हें क्षेम सुख यश कीर्ति, समृद्धि नहीं मिल सकती जब तक तू प्रजाओं की आज्ञाओं के अनुकूल आचरण नहीं करता वे ही तेरे क्षेम के दाता स्वामी हैं। तुझ से कष्ट होने पर वह क्षेम तुझ से छीन लेंगे जैसा कि एक बार पूर्व उन्होंने कर दिखाया था।

वेद के इस मन्त्र से विस्पष्ट पता लगता है कि ईश्वर की आज्ञा है कि संसार में Sovereignty of the People—प्रजा,जनता, जाति का राज हो—राष्ट्र में प्रजा की शक्ति अबाधित, निरङ्कुश, निरर्गल होवे; प्रजा ही वास्तविक

राजा है; वही राजाओं की स्वामिनी मालिक है न कि राजागण प्रजा के स्वामी हैं; वे प्रजा दलों को पाद कन्दुक के समान इधर उधर नहीं भटका सकते; न ही उनको स्वेच्छाचार से पीड़ित किया जा सकता है। अतः राजा गण प्रजा के माई बाप नहीं, राजाओं और प्रधानों को उचित हैं कि वे प्रजाओं से पितावत प्रेम करते हुए राज्य करें। पूजा ही राजाओं की स्वामिनी माता है क्योंकि उसी की इच्छा से राजा का जन्म होता है: जिस पुरुष को चाहे उसी को वही निर्वाचित करे। आशा है कि इस ईश्वरी उपदेश को पाठकवृन्द स्व-हृदयों में स्थान देंगे।

पूर्व में लिखा जाचुका है कि प्रजातन्त्र देशों में प्रजाकी प्रत्येक व्यक्ति की ओर से प्रधान बनने का संकल्प वा यत्न किया जाता है। ऐसा करना पागलपन या पाप या देशद्रोह या राजविद्रोह या गुप्त मन्त्रणा आदि नहीं समझे जाते बल्कि सुकर्म और सुचेष्टा समझे जाते हैं; ऐसे यत्न करने वाले पुरुषों की प्रशंसा और उत्साह की श्लाघा की जाती है। किन्तु एक सत्तात्मक राज्य में ऐसा इरादा करना राजद्रोह और पाप समझे जाते हैं। परम दयालु प्रभु

ने अपने पुत्रों को वेदों में जो शिक्षाएं दी हैं उन में एक शिक्षा यह भी है कि हरएक देशवासी अपने देश के प्रधान बनने की चेष्टा करे और उस के लिये जो असाधारण गुण आवश्यक हैं उनका संग्रह स्वव्यक्ति में करे। चूंकि यह विषय अत्यावश्यक है इस लिये पाठक उन अतिरोचक मन्त्रों को स्वयम् सावधानी से पढ़ें। हम नीचे उन के कुछ अंश देकर अर्थ करते हैं:—

यजु० १०.२,३,४.

वृष्ण ऊर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा ।
वृष्ण ऊर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि ॥
वृषसेनोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा ।
वृषसेनोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि ॥
अर्थेतस्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा ।
अर्थेतस्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त ।
सूर्य्यत्वचसस्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा ॥
सूर्य्यत्वचसस्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त ।
आपः स्वराजस्व राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त ।

हे सुखों की वर्षा करने वाले बलवान् प्रभो! आप राज्य के दाता हैं मुझे भी राज्य दीजिये।

अहो प्रर्थना स्वीकार होगई। हे सुखकारी स्वामिन्! आप राज्य प्रदान करने हारे हो, जाति को भी राज्य दीजिये। आप बलवान् सेना से युक्त हैं राज्य के दाता हैं मुझे भी राज्य दीजिये। अहो प्रार्थना स्वीकार होगई। मेरी जाति को भी राज्य दीजिये!

हे श्रेष्ठ पदार्थों के स्वामिन्! आप राज्य के दाता हैं मुझे भी राज्य दीजिये। मेरी जाति को भी राज्य प्रदान कीजिये।

हे सूर्य्य की भांति प्रकाशमान प्रभो! आप राष्ट्र के दाता हैं मुझे भी राज्य दीजिये। हे स्वराज्य करने वाले प्रभो! मेरी जाति को भी स्वराज्य दीजिये।"

ब्राह्मण ग्रंथों से ज्ञात होता है कि यह मन्त्र राज्याभिषेक के समय बोले जाते थे पहिला पद राजा की ओर से बोला जाता था और दूसरा पद राजा की ओर निर्देश करके ( अमुष्मै ) प्रजा का प्रतिनिधि अध्वर्यु परमात्मा से कहता था कि इस पुरुष को राज्य दीजिये। अर्थात् जाति को राज्य दीजिये—यह अर्थ हमारे हैं किन्तु मन्त्रों के प्रयोग और अर्थ में भेद हो सकता है। प्राचीनों ने राज्याभिषेक में उन का प्रयोग किया किंतु मेरे

विचार में दोनों अर्थों के करने में कोई क्षति नहीं। यजुर्वेद में स्थान २ पर राज के बारे में उत्तम विचार आये हैं। भगवान् दयानन्द ने आर्य्यभाषा में उसकी व्याख्या करके भारत वासिओं पर बहूउपकार किया है। प्रत्येक मन्त्र के अन्त में जो उस ऋषि ने भावार्थ दिया है उसे नीचे लिख देने से मनोरथ सिद्ध हो जावेगा। स्वामी जी महाराज ने हर एक स्थान पर 'सभापति' राजा माना है। यहाँ भी वह एक सत्तात्मक स्वच्छेचारी राजा की सत्ता को नहीं मानते। उनके अनुकूल वेदों में राजा के अर्थ सभापति प्रधान President के हैं जो कई सभाओं। विशेषतया विद्या-सभा, राजसभा, धर्मसभा की सहायता से राज्य करे, जो अपनी योग्यता के कारण प्रजावर्ग से निर्वाचित हो और जो यदि अयोग्य प्रमाणित हो तो पदच्युत किया जा सके। यजुर्वेद के पढ़ने से भी यह निश्चय नहीं होता कि प्रधान जीवन काल तक राज्यपद को सुशोभित करे वा कुछ वर्षों के लिये जैसे आजकल होता है। साथ ही यह ज्ञात नहीं हो ताकि निर्वाचित करने की क्या विधियां होनी चाहियें।

अब हम कई एक मन्त्रों के भावार्थों को लिखते

हैं शेष मन्त्रों की ओर संकेत कर देंगे ताकि पाठक वृन्द स्वयम् आवश्यकतानुसार उन्हें देखलेवें। हम वारंवार कह चुके हैं कि एक पुरुष राज्य करने के योग्य नहीं हो सकता और विशेष तौर पर वंशपरम्परा के राजा गण प्राय अयोग्य ही होते हैं। इस कारण उन की त्रुटियों को पूर्ण करने के लिये बलवती लोक सभाएं होनी चाहियें जैसे इंग्लैड में हैं:-और साथ ही आदर्श यह है कि जाति में से योग्यतम पुरुष को कुछ काल के लिये प्रधान बनाया जावे-यही बातें हम यजुर्वेद के मन्त्रों से सिद्ध करते हैं।

यजुः १६. २४ का भावार्थ स्मरण रखना चाहिये। 'मनुष्यों को चाहिये कि सभा और सभापतियों से ही राज्य की व्यवस्था करें! कभी एक राजा की स्वाधीनता से स्थिर न हों। क्योंकि एः पुरुष से बहुतों के हिताहित का विचार कभी नहीं हो सकता।

वेदभाष्य ५३९ पृष्ठ -राज्य का प्रबन्ध सभाधीन ही होने के योग्य है। ५४१पृष्ट जो इन्द्र अग्नि यम सूर्य वरुण और धनाढयों के गुणों से युक्त विद्वानों का प्रिय, विद्या का प्रचार कराने वाला, सब को सुख देवे—उसी को राजा मानना चाहिये।

( ६०१ ) सब विद्याओं में कुशल और अत्यन्त ब्रह्मचर्य्य के अनुष्ठान करने वाले पुरुष को सभापति करें।

( ६३० ) जो सब गुणों से उत्तम हो उसको सभापति करें।

( ६३३ ) प्रजाजनों को योग्य है कि जो सर्वोत्तम समस्त विद्याओं में निपुण सकल शुभगुणयुक्त विद्वान् शूरवीर हो उस को सभा के मुख्य काम में स्थापन करें।

( ७११ ) प्रजाजनों को चाहिये कि जो विद्वान् इन्द्रियों का जीतने वाला धर्मात्मा और पिता जैसे अपने पुत्रों का वैसे प्रजा की पालना करने में अतिचित्त लगावे और सब के लिये सुख करने वाला सत्पुरुष हो उसी को सभापति करें और राजा व प्रजा जन कभी अधर्म्म के कामों को न करें। जो किसी प्रकार कोई करे तो अपराध के अनुकूल प्रजा राजा को और राजा प्रजा को दण्ड देवे।

(७६६) सभाजनों और प्रजाजनों को चाहिये कि जिस की पुण्य, प्रशंसा, सुन्दररूप, विद्या, न्याय,

विनय, शूरता, तेज, अपक्षपात, मित्रता, सब कामों में उत्साह, आरोग्य, बल, पराक्रम, धीरज, जितेन्द्रियता, वेदादि शास्त्रों में श्रद्धा और प्रजापालन में प्रीति हो उसी को सभा का अधिपति राजा मानो।

जो पुरुष धर्मयुक्त न्याय से तुम्हारा निरन्तर पालन करे उसी को सभापति राजा मानो।"

राजा सभापति हो-इस बारे में यजुर्वेद के ऋषि-दयानन्द भाष्य के निम्न पृष्ठों पर भावार्थ में स्पष्ट शब्दों में प्रमाण मिलेंगे:—

४७२, ५३७, ५४२, ५५०, ६१८, ६२२, ६३७, ७३८, ७६६, ८४६, ८४८, ८५०, ८५१, ८५८, ८७९, ८८३, ८९१, ९०१, ९२४, ९४६, ९८३, १११४, ११२१, ११२५, ११४०, ११४१, १२४०, १३०४, १३०५, १७१०, १९५०, २१३६, २१७५-९०, २२५० ॥

बस अब हम सिद्ध कर चुके हैं कि वेद भगवान्, ब्राह्मण ग्रन्थ, युधिष्ठिर महाराज, श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज एक सत्तात्मक तथा वंशपरम्परा के राज्य

के विरुद्ध हैं। वे वाधित शक्ति का राज्य उत्तम समझते हैं। वेदों में वारंवार यही उपदेश है कि उत्तम पुरुष को ही राजा निर्वाचित करो, जो तुम्हारी सभाओं का सभापति हो और जबतक न्यायपूर्वक शासन करे उस की आज्ञा का पालन करो-उसे राजा मानो नहीं तो उसे प्रजाजन पदच्युत करके अन्य सर्वोत्तम पुरुष को राजा बनावें। इस प्रकार प्रजातन्त्र राज्य प्रमाणित है-वही सर्वोत्तम शैली है-सभ्य संसार में उसीका प्रचार है। भारतवासियों को अभी उस शैली के लाभ ज्ञात नहीं।

नागरिक सभाओं के द्वारा यह प्रतिनिधि शैली के द्वारा उन्हें कुछ शिक्षा दी जारही है। हमारी अभिलाषा है कि सर्वसाधारण नर नारी को प्रतिनिधि राज की पद्धतिओं में शिक्षित किया जावे। इस यत्न का प्रथम फल तो आप की भेंट किया गया है। परमात्मा करे कि भारतवर्ष में आङ्गल राज की ओर से हमें राज्य में शीघ्र उत्तरोत्तर अधिकार मिलें और हम उन अधिकारों को ग्रहण करने के योग्य बनने का दिन रात यत्न करें।

# परिशिष्ट

## भारत के १०० राजराजेश्वर

प्राचीन भारतवर्ष का जो इतिहास आज कल विद्यालयों और महाविद्यालयों में पढ़ाया जाता है वह ६०० वर्ष इस पूर्व से आरम्भ होता है इस से पूर्व सहस्रों वर्षों की सहस्रों ऐतिहासिक घटनाएं जिन की सत्यता कई ग्रन्थों से प्रमाणित ठहरती है और जो भारत के गौरव, यश, कीर्ति की वर्धक हैं—उन का किञ्चित् वर्णन नहीं होता। वस्तुतः हमारे पूर्वजों के कारनामे स्वर्णाक्षरों में अङ्कित करने योग्य हैं यहां पर एक ऐतिहासिक बात पर पाठकों की दृष्टि खींचता हूं। प्रायः यह ख़्याल है कि भारत में सदैव छोटे छोटे राजा गण राज्य करते रहे हैं—सम्पूर्ण भारत पर भी एक राजा का राज्य नहीं रहा—अन्य देशों को फ़तह करना तो बात ही और है। कहा जाता है कि चन्द्रगुप्त ने या चिरकाल पश्चात अकबर ने भारत को एक शासनाधीन करने का यत्न किया। औरंगजेब कुछ कामयाब हुआ किन्तु इसी यत्न में उस

का साम्राज्य नष्ट हो गया—फिर अंग्रेजों ने सारे भारत को स्वाधीन करके सब भारतीयों को एक जाति बनाने में सहायता दी है-इस कथन में बहुत सच्चाई है किन्तु हमें भारत के वे दिन न भूलने चाहिये जब भारत उन्नति के शिखर पर था। यदि यहां छोटे २ राजा होते थे तो हमारे प्राचीन ग्रन्थों में बड़े २ नृपतियों के नाम क्यों आते हैं? सबसे छोटा नृपति-प्रजा शासक राजा कहलाता था किन्तु राजाओं पर भी शासन करने वाले भिन्न २ नृपतियों-की पदवियों के नाम आये हैं-जैसे सम्राट्, स्वराट्, विराट्, महाराज, अधिराज, महाराजाधिराज, राजराज, चक्रवर्ती, एकराट्, विश्वराट् सार्वभौम।

अब इन शब्दों के अर्थ जो अमरकोषादि में दिये हैं देखने से पूर्णतया विश्वास हो जावेगा कि जिन २ नृपतियों के साथ यह उपाधियां लगाई जाती थीं--वे सार्थक होंगी-उन राजाओं ने अवश्य-मेव अपनी विजय पताका देश देशान्तरों और द्वीप द्वीपान्तरों में फहरायी होगी, देखिये

सम्राट्—येनेष्टं राजसूयेन मंडलस्येश्वरश्च यः।
शास्ति यश्चाज्ञया राज्ञः स सम्राट ॥

जिसने राजसूय यज्ञ किया हो, जो राजाओं पर शासन करता हो, जो Paramount Sovereign हो-वह सम्राट् कहलाता है।

चक्रवर्ती—आसमुद्रक्षितीश—समुद्रों से घिरी हुई सारी पृथिवी का जो स्वामी हो-उसे ही चक्रवर्ती कहते हैं।

एकराट् का भी यही अर्थ है-ऐतरेय ब्राह्मण में लिखा है:—

"पृथिव्यै समुद्रपर्य्यन्ताया एकराडिति" समुद्र तक जिस पृथिवी की सीमाएं फैली हुई हैं, उस पर शासन करने वाले नृपति को एकराट् कहते हैं, वह उस पृथिवी पर एकाकी राजा होता है। उसी की आज्ञाएं सब द्वीप द्वीपान्तरों के राजा पालन करते हैं। वही राजराजेश्वर होता है Universal Sovereign. उसे ही कहते हैं। उसी का नाम सार्व्वभौम है किन्तु विश्वराट् का शब्द अतीव सार्थक और रहस्यपूर्ण है। जो विश्व सारे संसार न कि केवल पृथिवी का ही—एकाकी राजा हो-उसे विश्वराट् कहते हैं। भागवत पुराण में मान्धाता महाराज के बारे में यूं लिखा है:— "उन सत्यप्रतिज्ञ नरपति मांधाता ने क्रमानुसार सम्पूर्ण

भूमण्डल को जीत कर राजाओं के अधीश्वर हो सार्वभौम उपाधि प्राप्त की"।

यह नाम केवल पुस्तकों में लिखने के लिये ही नहीं थे बल्कि सिंहासन पर बैठते हुए प्रत्येक राजा वा सम्राट् के राज्यतिलक समय यह सार्वभौम होने का आदर्श सामने रखा जाता था जिसका परिणाम यह अवश्य होता था कि महावीर युद्धरसिक, शक्तिशाली, राज्यनीतिकुशल, पराक्रमी राजाअवश्यमेव एकराट्, विश्वराट्, चक्रवर्त्ती वा सार्वभौम होने का यत्न करते थे। यदि यहां तक कृतकार्य न होते थे तो सम्राट् तो बनही जाते थे अर्थात् भारत देश को कन्याकुमारी से काश्मीर देश तक वा विन्ध्याचल से हिन्दुकुश पर्य्यन्त का राज्य प्राप्त करलेते थे। ऐसे बहुत महेश्वरों के नाम संस्कृत साहित्य में मिलते हैं- उदाहरणार्थ हम कुछ सूचियां यहाँ पेश करते हैं।

शतपथ ब्राह्मण १३. ५. ४ में अश्वमेध यज्ञ करने वाले राजाओं के नाम दिये हैं। किन्तु पहिले यह भी ज्ञात होना चाहिये कि अति प्राचीन काल में अश्वमेध यज्ञ करने का अधिकार किस नृपति को होता था ? आपस्तम्ब श्रौत सूत्र २०. १. १ में कहा है: "राजा सार्व-

भौमोऽश्वमेधेन यजेत" सार्वभौम राजा ही अश्वमेध यज्ञ करे। प्राचीन काल में तो इस नियम पर अवश्य काम किया जाता होगा यद्यपि पीछे इसकी बहुत परवाह न कीगयी हो। शतपथ में तेरह महाराजों के नाम आये हैं जिन्होंने अश्वमेध यज्ञ किया, यदि सारी भूमि उनके आधीन न भी हो तो भारतवर्ष का महाराज होने में संशय नहीं हो सकता। उनके नाम तथा जिस जाति के वे थे यूं दिये हुए हैं:—

१. जनमेजय पारिक्षित जो महाराज युधिष्ठिर का पौत्र था।

२. भीमसेन
३. उग्रसेन
४. श्रुतसेन

परीक्षित के भाई थे जिन्होंने एक दूसरे के पश्चात् राज्य किया।

५. पर आट्णार—कोसलदेश
६. पुरुकुत्स—इक्ष्वाकूवंशज
७. मरुत आविक्षित—अयोगवजाति
८. क्रैव्य—पांचाल जाति
९. ध्वसा द्वैतवन—मत्स्य जाति
१०. भरत दौष्यन्ति—मध्यदेश

११. ऋषभ याज्ञातुर—श्विक्नजाति
१२. सात्रासाह—पांचालदेश
१३. शतानीक सात्राजित

अब ऐतरेय ब्राह्मण की साक्षी लीजिये। उस में बारह अश्वमेध यज्ञ करने वाले राजाओं के नाम दिये हैं जिन में से जनमेजय, मरुत, आविक्षित, दौष्यन्ति और शतानीक के नाम शतपथ वाली सूची में ऊपर दिये जा चुके हैं। आठ नाम नये हैं उसने राजाओं की जाति नहीं दी बल्कि पुरोहितों के नाम दिये हैं। हम यहां उन आठ सार्वभौम राजाओं के नाम देते हैं जिन की छत्रछाया में सारी भूमि नहीं तो सम्पूर्ण भारतवर्ष तो अवश्यमेव था।

१४. शर्याति मानव. १५. आम्बष्ठ्य १६. युधांश्रौष्ठि १८. विश्वकर्मा भौवन १६. सुदास पैजवन. अंगविरोचन २१. दुर्मुख पाँचाल २२. अत्यराति जानन्तपि।

उक्त बाईस महाराजाओं के शासनकाल में ही यह भारत एक जाति, एक भाषा, एक वैदिकधर्म और लगभग समान रीति रिवाजों के धारण करने वाला ही नहीं था बल्कि अन्य कई महाराजाओं के समय

भी आतीयता, एकता, समानता, भ्रातृभाव की लहरें भारत में चलती थीं. छोटे २ राजाओं के राज्यों में भारत विभक्त न था बल्कि माण्डलिक राजाओं के ऊपर शासन करने वाले राजेश्वर चक्रवर्त्तिन् महाराज मौजूद होते थे। गरुड पुराण १४ ४१. ४०. में सूर्यवंशी चन्द्रवंशी तथा अन्य वंशों के उन महाराजों के नाम दिये हैं जिन्होंने अश्वमेध यज्ञ किये। यह अति प्राचीन राजागण हैं इन के नाम ब्राह्मण ग्रंथों में नहीं आये क्योंकि कहां अपेक्षया अर्वाचीन राजराजेश्वरों के नाम दिये हुए हैं। उक्त पुराण में २० बीस नाम आये हैं जो यह हैं:—

| | |
|---|---|
| २३. मनु | ३१. निमि |
| २४. दिलीप | ३२. पृथु |
| २५. मान्धाता | ३३. ययाति |
| २६. सगर | ३४. नहुष |
| २७. भगीरथ | ३५. पुरु |
| २८. अम्बरीष | ३६. दुष्यन्त |
| २९. अनरण्य | ३७. शिबि |
| ३०. मुचुकुन्द | ३८. नल |

३९. भरत ४१. पाण्डु

४०. शन्तनु ४२. सहस्त्रार्जुन

उक्त बीस राजराजेश्वरों के नाम गरुड़ पुराण में ही नहीं दिये गये बल्कि रामायण, महाभारत तथा अन्य पुराणों, कालिदास के रघुवंश आदि में पृथक् २ तौर पर इन का वर्णन आया है और वहां उन्हें अश्वमेध यज्ञ के करने वाला माना है। अतः वे मिथ्या नहीं हो सकते। उन महाशयों ने इस आर्य्यावर्त्त देश में अपनी विजयपताका एक सिरे से दूसरे सिरे तक अवश्य फहरायी। उन में से कई एक ने विदेशी राजाओं के शिर नीचे किये जैसे रघु ने अफ़गानिस्तान, बिलोचिस्तान और फारस को वीरता पूर्वक जीत कर भारत के आधीन किया - कालिदास ने इस विजय का जो वर्णन रघुवंश में किया है वह यहां देने योग्य है किन्तु स्थानाभाव से यहाँ नहीं दिया जाता।

अब मैत्र्युपनिषद् पृ० १. ख० ४ में जिन नये अश्व-मेध यज्ञ करने वाले राजाओं का नाम दिया है जिन्हें उपनिषद्कार ने स्वयम् चक्रवर्त्ती कहा है--उन सब के नाम यहां दिये जाते हैं जो नाम पहिले आचुके

हैं वे यह हैं:--ययाति, अम्बरीष, अनरण्य, भरत। तेरह नये नाम दिये हैं इस प्रकार अब तक ५५ चक्रवर्त्ती सार्वभौम राजाओं के नाम हम गिन चुकेंगे:-

४३. सुद्युम्न
४४. भूरिद्युम्न
४५. इन्द्रद्युम्न
४६. कुवलयाश्व
४७. यौवनाश्व
४८. वद्ध्र्यश्व
४९. अश्वपति
५०. शशविन्दु
५१. हरिश्चन्द्र
५२. नक्तु
५३. शर्याति
५४. अक्षसेन
५५. मरुत्

शांखायन श्रौत सूत्र १६.९ में भी अश्वमेध करने वाले महेश्वरों के नाम आये हैं जिन में से केवल एक नया है शेष छैः के नाम ऊपर आचुके हैं। वह नया नाम ५६. वैदेह अल्हार है।

महाभारत एक वृहत् सागर है उस में से चक्र-वर्त्ती राजाओं की सूची निकालना एक महायत्न का काम है--वह सूची वस्तुतः अतीव रोचक होगी और ऊपर किये हुए नामों की पुष्टि करने वाली भी अवश्य होगी। यहां पर केवल शाँतिपर्व २९ अध्याय में १६ महाराजों के नाम दिये हैं जिन में से

मरुत, भरत, भगीरथ, मान्धाता, ययाति, अंबरीष, शशविन्दु, सगर, पृथु के नाम तो पूर्व दिये जा चुके हैं किंतु कुछ नये नाम भी दिये हैं जो यह हैं:—

५७. सुहोत्र
५८. बृहद्रथ
५९. श्रीराम
६०. गय
६१. रन्तिदेव
६२. युधिष्ठिर

कौटिल्य अर्थशास्त्र में भी बहुत से चक्रवर्ती महाराजों के नाम दिये हैं जिन की यह गिनती है:--

६३. नाभाग
६४. दाण्ड्यक-भोज
६५. वैदेह--कराल
६६. तालजंघ
६७. ऐल
६८. अजविन्दु
६९. सौवीर
७०. रावण
७१. दुर्योधन
७२. डम्बोद्भव
७३. हैहय—अर्जुन
७४. वातापि

अठारह पुराणों को यदि ध्यान से पढ़ा जावे तो उक्त ७४ सार्वभौम महाराजाओं के अतिरिक्त अन्य बहुत से राजराजेश्वरों के नाम प्राप्त होंगे। मैंने केवल इस विषय का ख्याल करते हुये पुराणों को नहीं पढ़ा। इस कारण झट पट उस सागर में से

राजाओं के नाम निकाल कर पाठकों की भेंट नहीं किये जासकते। विष्णुपुराण में कई स्थानों पर चक्रवर्ती राजाओं के नाम आये हैं जिन में से यदि वे ७४ महेश्वर छोड़ दिये जावें जिन के नाम ऊपर दिये गये हैं तो शेष पन्द्रह राजाओं के नाम यह हैं:—

७५. बली
७६. मल्ल
७७. ककुत्स्थ
७८. पुरुरवस
७९. राघव
८०. दशानन
८१. अविकोलुत
८२. अभिक्षेत
८३. युवाश्व
८४. जयद्रथ
८५. चन्द्र
८६. रघु
८७. कार्लवीय
८८. महापद्मनन्द
८९. चन्द्रगुप्त

अन्य पुराणों में भी कुछ नये नाम मिलते हैं जैसे

९०. कूर्मपुराण में वसुमना
९१. लिङ्गपुराण में कार्तवीर्य--अर्जुन ९२. और उशना
९३. शिवपुराण में चित्ररथ
९४. भागवत पुराण में कुवलयाश्व ९५. और दृढाश्व

इन अति प्राचीन राजराजेश्वरों को छोड़ कर

यदि हम ईसाब्द के आस पास के समय तथा ६ सौ वर्ष पीछे तक का हाल लें तो उस में भी अश्वमेध यज्ञ करने वाले पांच राजाओं के नाम मिलते हैं उन की शक्ति भारत वर्ष में सुदृहत् थी यद्यपि सम्पूर्ण भारत-वर्ष के वे स्वामी न थे तथापि भारतवर्ष का अधि-काँश उन के आधीन था। अपने पूर्वजों जैसे परा-क्रमी, महाबलवान्, साहसी और शक्तिशाली वीर योधा न होने के कारण और विजय की नयी कठना-इयों से त्रसित होकर उक्त पांच राजाओं ने भारत के अधिकाशं जीतने पर ही अश्वमेध कर दिया, यद्यपि भारतीय नैपोलियन समुद्रगुप्त के अतिरिक्त अन्य किसी को अश्वमेध करने का अधिकार प्रतीत नहीं होता—किन्तु उन्होंने भारतवर्ष को एक छत्रच्छाया में लाने का वृहत् यत्न किया और बहुत कुछ सुफल हुए। उन के नाम यह हैं:—

९६. पुष्यमित्र
९७. समुद्रगुप्त
९८. कुमारगुप्त
९९. आदित्यसेन
१००. पुलिकेशी

इस प्रकार अपने प्राचीन साहित्य में से एक सौ राजराजेश्वरों, चक्रवर्त्तियों, सार्वभौम महाराजों के नाम

हमने पाठकों के सामने रखे हैं--इन को राजराट्, सम्राट्, चक्रवर्त्ती, अखण्डभूमिप, चातुरन्तोराजा की उपाधियां भी दी जाती थीं--यह वे महाराज हैं जिन के विषय में ग्रन्थकारों ने लिखा है। 'अनन्यां पृथिवीं भुङ्क्ते, जो सारी भूमि पर ऐसा राज्य करते हैं कि कोई अन्य उन के उस स्वामित्व में भाग लेने वाला नहीं होता। इस से सिद्ध है कि भारतवर्ष के इतिहास में कम से कम एक सौ वार इस भूमि को फ़तह करने का हमारे पूर्वजों ने यत्न किया और अपनी विजय पताका सौ वार इस सम्पूर्ण पृथिवी पर नहीं तो सम्पूर्ण भारत और उस के आस पास के देशों में फहरायी। क्या कोई अन्य ऐसा देश है जिस के ऐसे गौरवयुक्त कारनामे हों? एक समुद्रगुप्त ( देखो ९७ संख्या ) के कारनामों को देख कर आङ्गल ऐतिहासिकों ने उसे भारतीय नैपोलियन की उपाधि दी है किन्तु जब रघु, मान्धाता, सगर, दिलीप, राम, युधिष्ठिर आदि एक सौ महावीरों ने भारत की सीमाओं से गुज़र कर समुद्रों पार होकर भूमिनरेशों को स्वाधीन किया और सारी पृथिवी का या उस के अधिक भाग का भोग किया तो क्या हम अब भी विश्वासपूर्वक नहीं

कह सकते कि यह पुण्यभूमि भारत वीरजननी है—उस में एक सौ नैपोलियन हो चुके हैं जिन्होंने द्वीप द्वीपान्तरों और देश देशान्तरों को फ़तह करके अपनी मातृभूमि के यश, गौरव, कीर्त्ति को प्रज्वलित करके उस की सभ्यता भूमि पर फैलाई। ऐसी भारतभूमि, महावीरजननी रत्नगर्भा को सहस्रशः धन्यवाद हो! उसे ही वारम्वार हमारा नमस्कार हो!! परमपिता की कृपा हो कि उस की विजय ध्वनि से पुनः संसार गूंज उठे!!

# A Note on the Author

Dr. Balkrishna came of a Kshatriya family of Multan, in the Punjab. Born in 1882, he spent his boyhood in struggles against mediocrity. For after completing his primary education he was first apprenticed to a jewel-threader and then to a tailor. It appeared as if he would settle down as a tailor when by a fortunate turn of events he found himself in a Middle Vernacular School. He gave the first sign of talents by standing first in the Vernacular Final Examination. Then he joined the Multan High School and passed on to the D. A. V. College, Lahore, from where he took his B. A. degree. Then he joined the Government College, Lahore, and passed his M. A. with high distinction.

During the last part of his College career, he came under the influence of some great Indian political leaders, especially of Lala Lajpatrai, Sardar Ajitsingh and the Honourable Gopal Krishna Gokhale, and in 1908-9 took an active part in politics. But soon after he was drawn more powerfully to the Arya Samaj.

His high place in the M. A. examination would have helped him to a promising career under the Government, but he chose differently. He joined Lala Munshiram ( later Swami Shraddhanand ) as a worker in the Gurukul, Kangri. Here he spent over ten years as a Professor of Economics and Politics, as Vice-Principal and as Principal and sometimes acted in the place of Swami Shraddhanand as the Governor of the Gurukul University.

In 1919 he went to England and in February 1922 was admitted to the Ph. D. degree of London University. While a student in London, he went on lecturing tours and lectured on Vedic Religion and Economics in London, Oxford, Manchester and other towns in England, Wales and Scotland. The same year he returned to India and in May was appointed Principal of Rajaram College, Kolhapur. He worked in that capacity till his death on the 21st October, 1940. His term of office was distinguished

by the phenomenal growth of the institution. In 1922 it was an Arts College with only 293 pupils on the roll; at the time of his death it was a full-fledged Arts and Science College, teaching post-graduate courses in many subjects, with 920 pupils on its roll. He was also instrumental in developing Kolhapur as an educational centre, the Law and the Teachers' Training Colleges owing their existence to his initiative and efforts. He also worked as Inspector of Secondary Education in Kolhapur from 1926 to 1936.

He was connected with numerous learned societies. He was a Fellow of the Royal Economic Society, of the Royal Statistical Society, and of the Royal Historical Society, London; a Member of the Royal Asiatic Society, Bombay; a Member of the Econometric Association, U. S. A.; and a fellow of the University of Bombay till shortly before his death.

He was a Member of the Historical Records Commission of the Government of India and the first President of Bombay Presidency Teachers' Conference held at Poona in 1935 and President of the Modern History Section of the History Congress held at Allahabad in 1938.

He also took a leading part in the public life of Kolhapur. From 1924 to 1933 he was President of the Kolhapur Boy Scouts' Association. He was a Member of the Kolhapur Municipality and Kolhapur Ilakha Panchayat for a number of years. He was President of Kolhapur Arya Samaj and of the Educational Boards under it. He was for several years President of the Teachers' Association, Kolhapur.

As a representative of the all-India Arya Samaj organisation he attended the World Fellowship of Faiths in Chicago in 1933-34 and toured in U. S. A. and Europe on his way back. In U. S. A. he gave many lectures on Hindu Religion and Culture in the North Western, Howard, New York and Columbia Universities, to the World Fellowship of Faiths, the Indian Association at Detroit, the American League of India's Freedom and other bodies and was highly honoured by them and other American institutions and

eminent individuals. He delivered an important series of public lectures on political conditions of Europe after his return to Kolhapur.

He was distinguished as a public speaker and lectured in different parts of India too.

As an author he directed his energies to different subjects including Indian Religion and Culture, Economics, Politics and History. His monumental work, on which he devoted a large part of his spare time during his 18 years at Kolhapur, is the History of Shivaji the Great, of about 1650 pages in four volumes, dedicated to the only ruling representative of the noble House of Shivaji the Great, His Late Highness Chhatrapati Shri Rajaram Maharaja of Kolhapur. He wrote and saw through print the concluding pages of the book during the last weeks of his illness. The index given at the end of the last volume was left in manuscript by him. It has been printed after his death.

It was the desire of the Doctor to follow up his history of Shivaji by that of Rajaram, the second son of the founder of the Maratha Empire. He was collecting meterial for the purpose, especially from Dutch sources.

Shortly before he left Gurukul, Kangri, his first wife had died, leaving him a son and three daughters. He married again in 1925 and left five children—four daughters and a son. His first wife belonged to the Punjab and his widow, the undersigned, is from Maharashtra. *

In the publication of Shivaji the Great the author received valuable help and encouragement from His Late Highness Chhatrapati Shri Rajaram Maharaj of Kolhapur and his Government, from His Late Highness Shri Sayajirao Maharaja of Baroda, from the late Rajasaheb of Mudhol and others, for which I record my sincerest gratitude.

**Radhabai Balkrishna.**

---

* Dr. Balkrishna published his autobiography in Marathi in a serial form in "Kirloskar Masik" Nos. 185, 186 and 187 (June, July and August issues of 1935) from which details of his life are taken.